CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिक धर्म

नवम्बर १९६२

महर्षि दयानन्द सरस्वती

५० नये पैसे

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वर्ष ४३ **वैदिक धर्म** अंक ११

क्रमांक १६६ : नवम्बर १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमणिका

१ देवोंकी दिवाली (वैदिक प्रार्थना) ३९५

२ स्वाध्याय-मण्डल वृत्त ३९६

३ युग निर्माता महर्षि दयानंद सरस्वती
श्री भास्करानन्दजी शर्मा सिद्धान्त वाचस्पति ३९७

४ अग्नि डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ४०१

५ आर्यसमाजमें सस्वर वेदपाठकी व्यवस्था हो
श्री वीरसेन वेदश्रमी ४१२

६ इन्द्र देवताका परिचय
श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर ४१४

७ रामधुनका महत्व और प्रयोजन
श्री सुब्रह्मण्यम् 'मंद' ४१७

८ जर्मनवासियोंका संस्कृत-प्रेम
श्री वीरेन्द्रकुमार ४३३

९ 'मैं' या 'आत्मा'
श्री पं. विद्यानंदजी वेदालङ्कार ४३५

१० जीना है तो मिटा दो ये जातपांत
श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी ४३७

११ मनोपदेश श्री प्र. ग. यावळकर ४४०

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

भाग १–३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है।

भाग ५–६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है।

भाग ७–१० इनमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है।

भाग ११ इसमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं।

भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है।

भाग १३–१८ इनमें क्रियापद–विचारकी पाठविधि बताई है।

भाग १९–२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है।

प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ॥) और डा. व्य. =)

२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. १।)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो. 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

"वैदिक धर्म"

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

वी. पी. से रु. ५.६१, विदेशके लिये रु. ६.५०

डाक व्यय अलग रहेगा।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो,– 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वैदिकधर्म

दे वों की दि वा ली

अभिश्यावं न कृशनेभिरश्वं
नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरह्न्
बृहस्पतिर्भिनदाद्रिं विदद् गाः ॥

ऋ० १०।६८।११

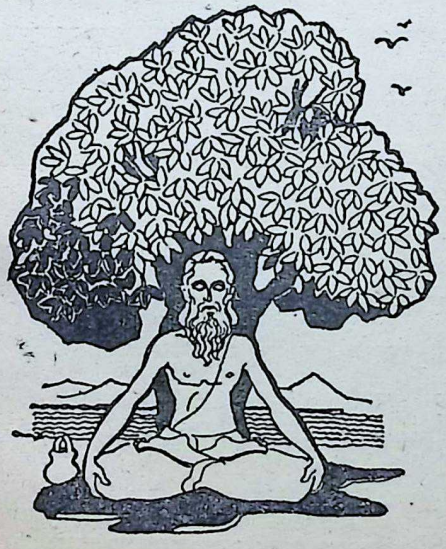

जब (बृहस्पतिः) बृहस्पतिने (अद्रिं भिनत्) मेघको फोडा और (गाः विदद्) किरणोंको बाहर प्रकट किया, तब (पितरः) पालन करनेवाले देवोंने खुश होकर (श्यावं अश्वं कृशनेभिः) जिस प्रकार काले घोडेको गहनोंसे सजाते हैं, उसी प्रकार (नक्षत्रेभिः द्यां अपिंशन्) नक्षत्रोंसे आकाशको प्रकाशित किया, तथा (रात्र्यां तमः अदधुः ज्योतिः अहन्) रातमें अन्धकार तथा दिनमें प्रकाश स्थापित किया ।

जब बृहस्पतिने असुरोंको हराकर देवोंकी गायें उन्हें लाकर दीं तब देवोंने द्युलोकमें नक्षत्र रूपी दीपक जलाए और द्युलोकको प्रकाशित किया । यह देवोंकी दिवालीका रूपक उत्तम है ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

स्वाध्याय-मण्डल वृत्त

वेदमुद्रणनिधि— इस मास नीचे लिखे हुएके अनुसार वेदमुद्रण निधिमें धन जमा हुआ।

श्री. एम्. जी. जोशी, न्यूदिल्ही	१०.६५
,, बालमुकुन्द संस्कृत महाविद्यालय, पूना-२	४०
,, धी रजिस्ट्रार युनिवर्सिटी पूना, पूना-७	२४०
,, नरेन्द्र मुलजी अँड दुलेराय मुलजी, माझगांव	१५
कुल रु.	३०५.६५

पूर्व प्रकाशित रु.	१,२२,२३०.७
कुल जमा रु.	१,२२,५३६.४

प्रकाशन— सामवेदका मराठी और हिन्दी प्रकाश जारी है। हिन्दीमें अथर्ववेदका प्रथम भाग ब्रह्मविद्य प्रकरण (ब्रह्मविद्याके हजार मंत्रोंका अनुवाद और व्याख्य सहित संग्रह) प्रकाशित हो गया है।

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पारड

उपनिषद् ग्रंथमाला

१	ईश उपनिषद्	२)	.३७
२	केन उपनिषद्	१.७५	.३१
३	कठ उपनिषद्	१.५०	.२५
४	प्रश्न उपनिषद्	१.५०	.२५
५	मुण्डक उपनिषद्	१.५०	.२५
६	माण्डूक्य उपनिषद्	.५०	.१२
७	ऐतरेय उपनिषद्	.७५	.१९
८	तैत्तिरीय उपनिषद्	१.५०	.२५
९	श्वेताश्वतर उपनिषद् (छप रहा है)		

सुबोध संस्कृत व्याकरण

(प्रथम और द्वितीय भाग)

प्रत्येक भागका मू. ५० न. पै. डा. व्य, १२ न. पै

इस 'सुबोध संस्कृत व्याकरण' द्वारा हम मॅट्रिक छात्रके लिये आवश्यक व्याकरण ज्ञानको पूर्ण बनाना चाह हैं। हमारी भाषा परीक्षाओंमें सम्मिलित होनेवाले परीक्षा भी इसकी सहायतासे सहज ही मॅट्रिक अथवा तत्स परीक्षाओंको उत्तीर्ण कर सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो. स्वाध्याय-मण्डल, (पारडी)' [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

युग निर्माता

महर्षि दयानन्द सरस्वती

लेखक

श्री भास्करानन्दजी शर्मा, सिद्धान्तवाचस्पति

☆

दीपावलीका महान् पर्व प्रति वर्ष आता है। इसी दिन कार्तिक वदी अमावस्या सम्वत् १९४० को वीर विक्रमके बीसवीं शताब्दीके अद्वितीय वेदोद्धारक, आर्य समाजके संस्थापक आदित्य ब्रह्मचारी आचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वतीकी उच्च आत्माने इस नश्वर शरीरका परित्याग कर, ब्रह्माण्ड नायक परमपिता परमात्माके क्रोडमें आश्रयका आनन्द प्राप्त किया। महापुरुषोंका देहावसान साधारण पुरुषोंकी मृत्युके समान केवल शोकजनक और रुलानेवाला नहीं होता है। उनका प्रादुर्भाव और अन्तर्ध्यान दोनों ही लोक कल्याण और आनन्द प्रदानके लिये होता है। ऐसे महापुरुष परोपकारमें अपने प्राणोंको अर्पण करते हैं। संसारके लोगोंके सुखके लिये अपने शरीरकी बलि देते हैं; इसलिये जनता उनके महान् बलिदान पर उनका कीर्तिकीर्तन और गुणगान करके एक प्रकारका आनन्दानुभव करती है। अतः आज महर्षि दयानन्दके गुणानुवादका अवसर उपस्थित है। महर्षि दयानन्दका आर्य जनता एवं मानव समाज तथा प्राणीमात्र पर इतने असंख्य और अनन्त उपकार हैं जिसका वर्णन करना साधारण लोगोंके शक्तिके बाहर है।

ऋषिवर दयानन्दके बचपनका नाम मूलशंकर था। इनका जन्म गुजरात प्रान्तमें मौरवी राज्यके अन्तर्गत टंकारा नामक ग्राममें एक औदीच्य ब्राह्मण कुलमें करशनजीके घर हुआ। इनका बड़े ही लाडप्यारके साथ पालनपोषण हुआ। बालक मूलशंकरको उनके बचपनमें घटित तीन घटनाओंने घरत्यागने पर विवश किया। शिवरात्रीके दिनकी घटित घटनाने इनके हृदयमें सच्चे शिवरूप परमात्माको प्राप्त करनेकी प्रेरणा उत्पन्न की। बहिनी और चाचाकी मृत्युकी घटनाने मृत्युञ्जय बननेके मार्गका निर्देश किया इनके पिताजी अपने पुत्र मूलशंकरको वैराग्यकी ओर बहते हुए देखकर बहुत ही चिन्तित हुए और गृहपाशमें बांधनेके लिये इनके विवाह करानेकी तैयारीमें भी लग गये—

लेकिन ईश्वरकी इच्छा मूलशंकरको कुछ और ही कार्यमें लगानेकी थी। पिताका सारा प्रयत्न विफल गया और करीब अठारह वर्षकी अवस्थामें इन्होंने हमेशाके लिये घरको त्याग दिया। अनेक कष्टोंको झेलते नदियों, पहाड़ों, जंगलोंको पार करते सिंहादि हिंसक भयंकर जानवरोंको भी अपने तेजसे हटाते योगाभ्यासके निमित्त योगियोंके तलाशमें गंगोत्री,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जमुनोत्री, अलमोडा, केदारनाथ, बद्रीनाथ और भी अनेक हिमालयमें पवित्र स्थानोंका परिभ्रमण कर तथा दक्षिणमें नर्मदा नदीके किनारे भी अनेक योगियोंसे योग्याभ्यासकी विधि सीखकर मथुरामें दण्डी स्वामी विरजानन्दजी महाराजके पवित्र चरणोंमें पहुंचे। वहां २½ वर्ष तक वेद और वेदके अङ्ग और उपाङ्गोंका अध्ययन समाप्तकर जगदुद्धारक, वेदार्कप्रकाशक स्वामी दयानन्द सरस्वतीके रूपमें संसारके सामने प्रकट हुए।

कर्मयोगी दयानन्दका सर्व श्रेष्ठ रूप जो सर्व प्रथम हमारे सम्मुख आता है वह जगदुद्धारक, सद्विद्या प्रचारक, संसारोपकारक, सार्वभौम आर्यमहोपदेशक, शास्त्रार्थ महारथी, तर्क वाचस्पति, वेदमार्तण्ड संन्यासीका रूप है। जिस प्रकार वे भारतके प्रचलित मतमतान्तरोंकी समालोचना करते थे उसी प्रकार अन्य देशोंमें प्रादुर्भूत अन्य मतोंकी भी छानबीन करते थे। सब संसारके लिये परमपिता परमात्मासे उपदिष्ट वैदिक धर्म ही उनको शिरोधार्य था और उसी वैदिक सिद्धान्तका सब मानव समाजको उपदेश देते थे। संसारका उपकार करना इनके जीवनका मुख्य लक्ष्य था।

मन्त्र द्रष्टा ऋषिवर दयानन्दका दूसरा रूप समाज सुधारकके रूपमें हम देखते हैं। इनके प्रादुर्भूत होनेके पूर्व भारत अगणित कुरीतियों और कुप्रथाओंका अखेट स्थल बना हुआ था। समाजमें बाल विवाह तथा वृद्धोंके विवाहकी घातक प्रथा जारी थी। 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' इसको लोग ब्रह्मवाक्यके रूपमें मानने लगे थे। जन्मसे जात्यभिमानके चिरकालसे वृद्धमूल विचारने समाजको खोखला कर दिया था, महर्षि दयानन्दने अपने प्रचण्ड पाण्डित्यके प्रतापसे इन सब सामाजिक कुरीतियों पर वज्र सा प्रहार किया उसके कारण ही समाजसे आज उस प्रकारकी बहुतसी कुरीतियां दूर हुई और यह समाज जाग्रत हुआ। महर्षिको अपने इस पवित्र कर्तव्यको निभाते हुए एक नहीं, दो नहीं बल्कि अठारह बार जहर खाना पडे।

रावकर्णसिंहके लपलपाती चमचमाती तलवारके वारका सामना करना पडा। अमृतसरकी सभामें इनके उपर भयंकर जहरीला सर्प डाला गया अनेक स्थानों पर रूढी वादियों द्वारा इन पर ईंट, पत्थर आदि बरसाये गये, अनेक प्रकारसे अपमान किया गया, इन ईसाइयोंका विदेशियोंका ब्रिटिश गवर्नमेन्टका एजेन्ट तक बताया गया तो भी ऋषिवर अपने पवित्रकार्यके करनेमें अहर्निश लगे रहे, लेशमात्र भी निराश और दुःखी नहीं हुये। ईश्वर विश्वास और आत्मविश्वासके आधार पर आगे ही आगे बढते गये और अन्तमें उनको न्यायमूर्ति गोविन्दरानाडे, बाबू विपिनचन्द्रपाल, राजाराममोहनराय जैसे सहायक शुभचिन्तक तथा पं. लेखराम, गुरुदत्तविद्यार्थी एम. ए., स्वामी श्रद्धानन्दजी ऐसे अनेक भक्त धर्मप्रचारक भी प्राप्त हुये जिनके कारण इनका कार्य आगे बढा आज तो उनके भक्त और अनुयायी लाखोंकी संख्यामें दृष्टिगोचर होते हैं यह था समाज सुधारक दयानन्दका दूसरा रूप।

महर्षि दयानन्दका तीसरा रूप देवगिराके उद्धारक तथा आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रसारकके रूपमें देखते हैं। इस दिशामें जो मार्ग ऋषिवर दयानन्दने दिखाया आज देश उसका अनुसरण कर रहा है। संस्कृत और हिन्दीके प्रति जो लोगोंकी घृणाकी वृत्ति उत्पन्न हो गई थी वह जाती रही अब तो वह समय भी शीघ्र आनेवाला है कि विश्वका प्रत्येक नागरिक संस्कृतका ज्ञान प्राप्त करनेमें गौरव समझेगा। जिसके द्वारा विश्वका मानव समाज सच्ची मानवता और विश्व बन्धुत्वके वास्तविक सिद्धान्तको अपना सकेगा।

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' सारे संसारको श्रेष्ठ आर्य बनाओ यह ऋषिवरका नारा था। अगर सम्पूर्ण संसारके लोग देववाणी संस्कृत और हिन्दीका अध्ययन व पठनपाठन करके वैदिक संस्कृति और सभ्यताको अपना ले तो विश्वमें निश्चितरूपसे शान्ति और सुखका साम्राज्य स्थापित हो सकेगा। महर्षि दयानन्दने इसी लिये देववाणी (संस्कृत) का उद्धार और आर्यभाषा (हिन्दी) के प्रसारका कार्य अपनी मातृभाषा गुजराती होनेपर भी सर्वप्रथम प्रारम्भ किया यह इनके ही द्वारा हो सका, यह था ऋषिवर दयानन्दका तीसरा स्वरूप।

इस दीपावलीके पवित्र अवसर पर भारत भाग्य विधाता, नवयुग निर्माता महर्षिके जीवनकी कुछ छोटी छोटी लेकिन महत्वपूर्ण घटनाओंका विवरण देना अनुचित न होगा यथा—

(१) संयमी दयानन्दकी बलकी परीक्षा लेनेके लिये एकबार एक बडा पहलवान् इनके पास आया। स्वामीजीने उसके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भावको जानकर अपनी निचोडी हुई गीली कोपीन उसको देकर कहा कि इसको निचोडो। वह उसमेंसे एक बूँद भी पानी नहीं निकाल सका। स्वामीजीने उसके हाथसे पुनः उसी कोपीनको लेकर अपने हाथोंसे निचोडकर कई बूंद पानी उसमेंसे निकाल दिया। ऋषिके इस अतुल बलको देखकर वह पहलवान लज्जित होकर चला गया।

(२) किसी सहृदय भक्तने ऋषिवरसे पूछा हे भगवन्! इस समय संसारमें प्राचीन कालीन जैसी मन चाही उत्तम सन्तति क्यों नहीं उत्पन्न होती? ऋषिवरने इस प्रश्नका उत्तर इस प्रकार दिया— 'प्राचीन कालमें आर्यरत्न गृहस्थ समय समय पर वेदानुकूल सन्ततिके संस्कार यज्ञादि किया करते थे, जिसके कारण उनके सन्तानोंके हास्यमधुर मुख-कमल उत्तम ओजरूपी सूर्य किरणोंसे तेजोमय सुहाते थे। विद्या, तप, विनय, शील एवं सद्गुणोंसे शोभित, पवित्र-हृदयवाली, गृहराजकी लक्ष्मीसी महिलायें थीं और उन्हीं गुणोंसे अलंकृत गृहस्थ सज्जन थे तभी उस समय उत्तम सन्तति उत्पन्न होती थी।

इस युगमें तो मनुसन्तति मानवधर्मको भूलकर वेद विहित संस्कारोंका त्याग करके विषय सुख विलासको उत्तम जानती हुई इस पुण्य मानवजीवनको पशु समान बिता रही है। अनेक कुरीतियाँ और बुरी रूढियाँ निशाचरीके समान इन विषय विलासी, हिताहित विवेक रहित मानवोंको अज्ञानान्धकार पूर्ण मार्गमें छल बलसे ले जारही है तो हे भक्तजनो! ऐसे मनुष्य अन्धेके समान दुःखरूपी कूपमें क्यों न गिरें? ऐसा अज्ञानजन्य मत मतान्तरोंके आश्रय लेनेवाले विलासी गृहस्थोंके पुत्र कुत्तोंके समान कामी अतएव निस्तेज होकर दुर्गतिको प्राप्त होते जा रहे हैं। यह था ऋषिवर दयानन्दका उद्धार।

(३) फर्रुखाबादमें एक प्रतिष्ठित सेठका पुत्र वेश्यागामी और मदिरा सेवी हो गया था। उसके पिताकी प्रार्थनासे योगीराजने उस युवकको अपने पास लानेके लिये आदेश दिया। उस युवकके दो सदाचारी मित्र थे। लाला साहबने उनसे कहा कि किसी प्रकार इसको स्वामीजीके पास ले जाओ वे दोनों ऋषिके पास उसको ले आये। ऋषिने भक्तिसे नम्र मस्तक हुए इन तीनों युवकोंको प्रेमामृत पूर्ण दृष्टिसे आदर देकर वेश्यागमनके दोषोंको लक्ष्य करके उपदेश दिया— 'हे भद्र युवको! वैसे तो सारे ही दुर्व्यसन सब आपत्तियोंके मूल, अनिष्टके कारण सर्व सम्पत्तिके विनाशक तथा सम्पूर्ण पुण्य कर्मोंके घातक होते हैं, उसमें अति निन्दनीय व्यसन वाराङ्गनाओंके सङ्गसे मनुष्य मदिराका व्यसनी बन जाता है, अतः उसकी कीर्तिके साथ सारे धार्मिक कार्य और सब गुण नितान्त नष्ट हो जाते हैं। निश्चयसे धनको ही चाहनेवाली ये गणिकायें अपने हाव भावसे तरुण जनोंके मनोंको हर लेती हैं।

सर्वस्व अपहरण कर लेने पर सफल मनोरथ हो जानेसे ये फिर निर्धन पुरुषोंका मुखतक देखना नहीं चाहती। वेश्यागामी उस युवककी गणिकाके गर्भसे उत्पन्न हुई युवती कन्या वेश्यागृहमें रहती फिर वह निन्दित कर्म करके अपने पिताको नरकमें गिराती है। सो ये जन स्वयं गणिकानुरक्त होकर सचमुच कन्याको वेश्या ही बनाते हैं। इस प्रकार हृदयस्पर्शी, मर्म भेदी ऋषिवरके वचन सुनकर उस युवकका शरीर रोमांचित हो गया और अपने पाप कर्मोंसे कांप उठा। तत्काल ही मुनिके पवित्र चरणों पर गिरकर पश्चाताप करने लगा। और ऋषिवरके उपदेशसे वेश्यागमन रूपी घोर पापके कीचड और शराबखोरीके दल दलसे निकल आया।

(४) वृन्दावनके मुनीम मांगीलाल नामक एक विरोधीने एक कसाई और एक शराबवालेको ऋषिवरके पास भेजा। उन्होंने जाकर स्वामीजीसे कहना आरम्भ किया हमारे शराब और मांसके दाम तो दे दीजिये। स्वामीजीने हंस कर कहा बहुत अच्छा, व्याख्यानके पश्चात् तुम्हारा हिसाब भी कर दूंगा। व्याख्यान समाप्त होनेपर यतीन्द्रने एक हाथसे एक की और दूसरे हाथसे दूसरेकी गर्दन पकड कर पूछा कि- बताओ तुम्हारे कितने दाम हैं? तब उन दोनोंने घबडा कर उन्हें भेजनेवालेका नाम मुनिवरको बता दिया। लोग आश्चर्यसे चकित हो गये।

(५) कतार गांवके किसानोंने महर्षिको भुनी हुई ज्वार (पोंक) खिलानेके लिये निमन्त्रण दिया, मधुरभाषी यतीन्द्र वहां गये और आम्रकाननमें किसानोंके साथ बैठकर आनन्दसे भुनी हुई ज्वार खाई मन्त्रदाता दयानन्दने उन किसानोंको उपदेश दिया जैसे कच्चे खेतको काट लेनेसे अन्न नष्ट हो जाता है, कच्चे फल और ईखमें मिठास नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

होता ठीक उसी प्रकार छोटी आयुमें जो सन्तानका विवाह कर देते हैं उनका वंश ही बिगड जाता है। सन्तानके सुख और उन्नतिका सदा अभावही बना रहता है। ऋषिवरके इस सुन्दर उपदेशसे उस ग्रामसे बाल विवाहकी कुरीति दूर हो गई।

(६) मुनीन्द्र दयानन्द पहले एक कोपीन वस्त्र शरीर पर धारण करते थे और भाषण और उपदेश संस्कृत भाषामें ही देते थे। एक वार श्री केशवचन्द्र सेनने मुनीन्द्रको लोकभाषा हिन्दीमें उपदेश देने तथा नगरमें वस्त्र धारण करनेकी सुसम्मति दी। ऋषिवरने इस जनहित कारक उनकी सम्मति मानली तबसे शरीर पर पूरे वस्त्र धारण करने लगे और लोकभाषा हिन्दीमें आम जनताको उपदेश देने लगे क्योंकि वह हठी स्वभावके नहीं थे और जिस किसीके भी उत्तम सलाहको बडी ही प्रसन्नता पूर्वक मान लेते थे।

इस प्रकार ऋषिवर दयानन्दका जीवन अनेक सद्गुणोंका अनुपम भण्डार था। इनके जीवन घटनाओंका जितना ही मनन और चिन्तन किया जाय उतना ही अधिक लाभ होगा। ऋषिवर दयानन्द निर्वाण दिवस पर हम सब इनके पवित्र, विशुद्ध जीवनचरित्रका अध्ययन करें। विद्वानों द्वारा प्रवचनों और व्याख्यानोंको सुनकर ऋषिवरके दिव्य जीवनका दर्शन करें। तथा कुछ समय एकान्तमें बैठकर उन सब बातों पर गहराईके साथ मनन और चिन्तन करें और यतीन्द्र दयानन्दके किन्हीं महान् दिव्य गुणको अपने अन्दर लानेका दृढ संकल्प करें। ऐसा करने पर एक वर्षके पश्चात् अगली आनेवाली दीपावली पर हम अपने जीवनका सिंहावलोकन करके देख सकेंगे कि हम एक वर्षमें आजसे कहाँ तक आगे बढे हैं, अपने जीवनका विकास कर पाये हैं। यही इस दीपावलीके पवित्र पर्वको मनाने और ऋषिवर दयानन्दके निर्वाण उत्सव करनेका लाभ है॥

सूचीपत्र मंगवाइये] **वेदकी पुस्तकें** [ग्राहक बनिये

	मूल्य रु.		मूल्य रु.
ऋग्वेद संहिता	१०)	यजुर्वेद वा. सं. पादसूची	१॥)
यजुर्वेद (वाजसनेयि संहिता)	४)	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)
सामवेद	३)	अग्नि देवता मन्त्र संग्रह	६)
अथर्ववेद	६)	इन्द्र देवता मन्त्र संग्रह	७)
(यजुर्वेद) काण्व संहिता	५)	सोम देवता मन्त्र संग्रह	३)
(यजुर्वेद) मैत्रायणी संहिता	१०)	मरुद्देवता मन्त्र संग्रह	२)
(यजुर्वेद) काठक संहिता	१०)	दैवत संहिता (तृतीय भाग)	६)
(यजुर्वेद) तैत्तिरीय संहिता, कृष्ण यजुर्वेद	१०)	सामवेद कौथुम शाखीयः ग्रामगेय (वेय प्रकृति) गानात्मकः	६)
यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र	१॥)		

मूल्य के साथ डा. व्य., रजिस्ट्रेशन एवं पेकींग खर्च संमिलित नहीं है।

मंत्री— स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अग्नि

[डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, हिंदुविश्वविद्यालय काशी]

ऋग्वेदमें अग्नि प्रधान देव है। अग्निको मर्त्योंमें प्रविष्ट अमृततत्व कहा है (मर्तेष्वग्निरमृतो निधायि) अग्नि मर्त्योंमें अमृत ज्योति है। जो नश्वर हैं, उनमें अग्नि ऋतका 'अमृत गोत्ता' है। अनेक सूक्तोंमें अग्निके इस विशिष्ट दिव्यगुणकी ओर संकेत है। वस्तुतः यह भौतिकशरीर मरणशील है और इस शरीरमें बसनेवाला अमृत तत्व ही 'अग्नि' या 'प्राण' है। वैदिक ऋषियोंकी दृष्टिमें अग्निका देवतात्मक रूप सबसे मुख्य तथ्य है। जिस स्थूल अग्निको हम देखते हैं, वह समिधा या ईंधनके जलानेसे उत्पन्न होती है। भूतोंके धरातल पर यह अग्निका प्रकट होना है। शक्ति केवल भूतोंके माध्यमसे ही व्यक्त या मूर्त्त होती है। अतएव प्रत्येक अग्निका मूर्त्तरूप या शरीर है, वही उसकी समिधा है; समिधाके जलनेसे अग्नि प्रत्यक्ष होती है। इसी नियमके अनुसार शरीरमें प्राणाग्नि प्रतिदिन प्रगट हो रही है।

यह अग्नि तीन प्रकारकी है। इसकी तीन मातायें, तीन जन्म, तीन सधस्थ या स्थान हैं। इसका त्रिविध रूप अग्निके तीन भ्राताओंके रूपमें इंगित किया गया है। अग्निके इस रूपका विस्तृत वर्णन आता है, किन्तु उसका समझना सरल है। इस विश्वके मूलमें जो विलक्षण शक्ति तत्व है, उसकी संज्ञा अग्नि है। इस विश्वमें प्राणियोंके तीन वर्ग हैं, अर्थात् वृक्ष–वनस्पति, पशु–पक्षी और मनुष्य। तीनोंमें ही प्राण या जीवनकी सत्ता है। यही विश्वका त्रिक है। इसीको मन, प्राण और वाक् कहते हैं। इसी त्रेधाविभागके लोकात्मक प्रतीक पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्यौ हैं। इन लोकोंका अभिप्राय देशात्मक नहीं, किन्तु ये संज्ञान या चितितत्वके तारतम्यके बोधक तीन धरातल हैं। इन तीनोंके संचालक तत्वोंको क्रमशः अग्नि, वायु और आदित्य कहा जाता है। यही तीन प्राणाग्नियां हैं, जो विश्वके विराट् शरीरमें और मानव देहमें समिद्ध या प्रज्वलित हैं। मूलतः यही अग्नि है जो त्रेधा विभक्त या तीन प्रकारसे सिद्ध हो रही है (एक एवाग्निः बहुधा समिद्धः)। अभिव्यक्तिके लिए तीनों ही आवश्यक हैं। अग्नि पार्थिव पंचभूतोंका प्रतीक है, वायु अंतरिक्षस्थानीय प्राणका और आदित्य द्युलोकस्थानीय मनका। एक ही अग्नि देवता पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोकमें तीन देवोंके रूपमें कहा जाता है।

प्राण संयुक्त शरीर अर्थात् प्राणीके जन्मके लिए इन तीन अग्नियों, या तीन देवताओं या तीन लोकोंका एकत्र सम्मिलन आवश्यक है। प्रत्येक प्राणी मन, प्राण, और भूतकी समष्टि है। ये तीनों प्रत्येक केन्द्रमें एक साथ रहते हैं। अग्निके इन तीन भ्राताओंका सहयोगी समूह है। क्रमशः एकत, द्वित, और त्रित अथवा शुचि–पावक–पवमान नामक इन तीन भाइयोंका एक तिगड्डा है। उनकी संयुक्त संज्ञा वैश्वानर है। वैश्वानरका अर्थ है सब या तीन नरोंका समूह जो कि तीन संचालक प्राण सृष्टिमात्रके लिए आवश्यक हैं। जैसे मानव देहमें जीवनी शक्तिकी संज्ञा वैश्वानर अग्नि है जो खाए हुए अन्नको पचाती है और शरीरके भीतर अनेक रासायनिक और प्राणमयी क्रियाओंकी शृंखलाको जन्म देती है जिसके फलस्वरूप रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, इन छह धातुओंका निर्माण होता है और अंतमें सातवीं धातु शुक्र बनती है जो रेत रूपमें आगेके उत्पादन चक्रको जारी रखती है। अग्निका उत्पादक स्वरूप यज्ञ है जिसमें देव या शक्ति स्थूल भूतको जिसे सोम कहते हैं, स्वीकार करके उसका भक्षण करती है अर्थात् उसे अपने स्वरूपमें परिवर्तित कर लेती है। अग्नि 'अन्नाद' है और सोम 'अन्न' है। अग्नि और सोम, अन्नाद और अन्न, योषा और वृषा, स्त्री और पुरुष, अर्थात् शक्ति और भूत अथवा द्यावापृथिवी, इनका सम्मिलन जीवन या प्राणके

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चक्रका पूरा स्वरूप है। इसी स्वरूपसे यज्ञ-मंडलका निर्माण होता है जिसमें वसु-रुद्र-आदित्य और उनके बीचके दो संधिप्राण, जिन्हें 'अश्विनौ' कहते हैं अखण्ड यज्ञ मंडलका निर्माण करते हैं।

अग्नि या प्राण शक्तिका किसी बिन्दु पर प्रादुर्भाव एक यज्ञ है। सृष्टिका विराट् धरातल पर जन्म विराट् यज्ञ कहलाता है जिसमें स्वयं प्रजापति अपनी आहुति डालते हैं। ऋग्वेदमें इसे 'सर्वहुत यज्ञ' कहा है (१०।६।८)। इस विराट् यज्ञमें आत्माहुति देनेवाले पुरुषका क्या स्वरूप है? वह स्वयं अग्नि स्वरूप है। उस अग्निको विश्वकी मूलभूत निर्मात्री शक्ति या विराट् प्रकृति ही कहा जा सकता है जिसके अदिति और दक्ष ये दो रूप हैं। प्रत्येक यज्ञका अधिष्ठाता 'प्रजापति दक्ष' कहलाता है और दक्षकी माता अनंत प्रकृतिकी संज्ञा अदिति है।

इन दोनोंमें स्पष्ट ही कार्य-कारण भाव देखा जा सकता है। विश्वकी रचनासे जो पूर्वकी अवस्था थी उसमें देवमाता अदितिकी सत्ता सर्वोपरि है। उस समग्र अदितिसे ही जो व्यष्टि रूप यज्ञ होते हैं उनमेंसे प्रत्येकका अधिपति अदितिका पुत्र 'दक्ष' है। किन्तु इस यज्ञीय विधानकी एक दूसरी दृष्टि भी है। उसके अनुसार मूलभूत अदिति शक्तिका ही एक अंश दक्षके यज्ञमें जाता है। इस प्रकार इस शक्तिको दक्षकी पुत्री भी कहा जा सकता है जैसा ऋग्वेद १०।७२। ४,५ में कहा है

अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि।
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव॥

जैसा ऊपर कहा गया है एक ही मूलभूत शक्ति तत्व विश्वमें त्रेधा विभक्त हुआ है। उसीकी संज्ञा मन, प्राण, वाक् है। ये ही अग्निके तीन जन्म या उसको उत्पन्न करने वाली तीन माताएं हैं। इसीलिए अग्निको 'त्र्यम्बक' (ऋग्वेद ७।५९।१२) या तीन माताओंका पुत्र कहा गया है। रुद्रकी भी यह एक संज्ञा है क्योंकि ऋग्वेद और ब्राह्मणग्रन्थोंके अनुसार अग्नि और रुद्र पर्याय हैं (अग्निर्वै रुद्रः, शतपथ ५।३।१।१०, ताण्ड्य १२।४।२४, तैत्तिरीय १।१।५८, ऋग्वेद २।१।६, त्वमग्ने रुद्रः)। प्राचीन नैरुक्तोंकी दृष्टिमें अग्निको रुद्र कहनेका पर्याप्त कारण था। प्राणियोंमें जो बुभुक्षा या अज्ञनाया तत्व है वही 'रुद्र' है। सीधे शब्दोंमें हरेक प्राणिकेन्द्र बाहरसे कुछ अन्न लेना चाहता है। वही उस केन्द्रके भीतर व्याप्त उसकी बुभुक्षा है। प्रत्येक केन्द्रकी व्याप्तिको उसका 'द्यावापृथिवी' कहा जाता है। द्यावापृथिवीकी ही संज्ञा 'रोदसी लोक' है। रुद्र और रोदसीका घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहां रुद्र या अज्ञनाया तत्वका निवास हो वही 'रोदसी' है। प्रत्येक प्राणिशरीर एक एक 'रोदसी' है। यह सारा विश्व भी रोदसी ब्रह्माण्ड है, जिसके केन्द्रमें सूर्य रूपी रुद्र सोमपान के लिए धू-धू कर रहा है। प्राचीन ब्राह्मण ग्रन्थोंमें रुद्रकी एक विचित्र आर्थी निरुक्ति बताई गई है।

वहां कहा है कि प्रत्येक प्राणिके भीतर जो मध्य प्राण दहक रहा है वही 'इन्धी दीप्तौ' धातुसे इन्ध कहलाता है, उस इन्धकी ही परोक्ष संज्ञा 'इन्द्र' है। वह मध्यप्राण जब केन्द्रमें जाग्रत होकर स्पंदन करने लगता है तब उसके लिए बाहरसे अन्न ग्रहण करनेकी आवश्यकता पडती है। वही अन्नके लिए तीव्र आकांक्षा उसका रुदन है। बच्चा जब भूखा होता है तब वह रोता है। उस रुदनके कारण ही प्रत्येक प्राणिकेन्द्रमें विद्यमान प्राणतत्वको 'रुद्र' कहा जाता है। हरेक बीजके भीतर जो उसका केन्द्र है वह पहले सुषुप्त रहता है और बादमें जब वह सक्रिय हो जाता है तब उसे उसका जागरण कह सकते हैं। वह प्राणतत्व अन्नाद अग्निका रूप है। उसे तत्काल अन्न या सोम चाहिए। जैसे ही अन्नाद अग्निको सोमकी प्राप्ति होती है वैसे ही आदान और विसर्गकी क्रिया आरंभ हो जाती है। आदान और विसर्ग ही जीवनका लक्षण है। ऋग्वेदमें कहा है कि 'जब अग्नि जागता है तब सोम उसके पास आकर उसके साथ अपने सख्य भावका निवेदन करता है—'

अग्निर्जागार तमयं सोम आह।
तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः। ऋग्वेद ५।४४।१५।

अग्नि और सोम दोनों एक ही नीडमें रहनेवाले पक्षी हैं। सोम या अन्नकी प्राप्तिसे अग्नि कुछ कालके लिए शान्त हो जाता है। यह अग्नि या रुद्रका 'शिव' रूप है। कुछ काल बाद अग्नि फिर बुभुक्षित हो जाता है। उसे 'रुद्र' या 'घोर अग्नि' कहते हैं। जिस अग्निको सोम प्राप्त नहीं होता वह सर्वभक्षी घोर रूपमें शरीरको ही जला डालता है या खाने लगता है। इस दृष्टिसे सोम अमृत और जीवन-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

का रस है। उस सोमका पान रुद्रको तुष्ट करता है। रुद्र ही तो इन्द्र है जिसे सोम सबसे अधिक प्रिय है। सोम अग्निका प्रतिपक्षी तत्व है। सोम शीत और अग्नि उष्ण होती है। सोमका स्वभाव आर्द्र और अग्निका शुष्क कहा गया है—

यद्वै शुष्कं यज्ञस्य तद् आग्नेयम्, यद्वा आर्द्रं यज्ञस्य तत् सौम्यम्। शतपथ ३।२।३।६-१०

द्युलोकमें जो सूर्य है वह अग्निका ही रूप है—

अग्नेरनीकं बृहता सपर्यय
दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य। ऋग्वेद १०।७।३

यह जो द्युलोकमें महान् यजनीय देव सूर्य है वह अग्निका मुख है। मैं उसकी उपासना करता हूं। इस पृथिवी लोकमें अग्नि, अंतरिक्षमें इन्द्र और वायु, द्युलोकमें सूर्य यही तो तीन देवता हैं। यह इन देवोंकी महिमा है जो इनके अलग-अलग नाम कहे गए हैं। ये कई नाम उनके स्थान विभागके कारण हैं। एक होते हुए भी उनके तीन नाम यही तो उनकी विभूति है। कवियोंने मंत्रोंमें स्पष्ट कहा है कि इन तीन देवताओंका जन्म एक दूसरे पर निर्भर है—

अग्निरस्मिन्नथेन्द्रस्तु मध्यतो वायुरेव च।
सूर्यो दिविस्तु विज्ञेयास्तिस्र एवेह देवताः
॥ ६९ ॥
एतासामेव माहात्म्यान्नानात्वं विधीयते।
ततस्थानविभागेन तत्र तत्रेह दृश्यते ॥ ७० ॥
तासामियं विभूतिर्हि नामानि यदनेकशः।
आहुस्तासान्तु मंत्रेषु कवयोऽन्योन्ययोनिताम्
॥ ७१ ॥ बृहद्देवता १

भूत-भविष्य वर्तमान इन तीन कालोंमें जो भी चर और अचर विश्व है उस सबके जन्म और नाशका कारण एक मात्र सूर्य है। जो सत् है और जो असत् है, दोनोंकी योनि यही सूर्यरूपी प्रजापति है। वही अक्षर तत्व शाश्वत ब्रह्म और वाणीका एकमात्र लक्ष्य है। वह अपने आपको तीन रूपोंमें विभक्त करके इन तीन लोकोंमें विराजमान है। जितने देव हैं सबको यथास्थान उस सूर्यने अपनी रश्मियोंमें निविष्ट कर रखा है। यह जो समस्त भूतोंमें और सब लोकोंमें तीन प्रकारसे स्थित अग्नि है उसे ही ऋषियोंने अपने शब्दोंमें तीन नामोंसे कहा है—

भवद्भूतस्य भव्यस्य जंगमस्थावरस्य च।
अस्यैके सूर्यमेवैकं प्रभवं प्रलयं विदुः ॥ ६१ ॥
असतश्च सतश्चैव योनिरेष प्रजापतिः।
यदक्षरं वाच्यं च यथैतद्ब्रह्म शाश्वतम् ॥ ६२ ॥
कृत्वैष हि त्रिधात्मानमेषु लोकेषु तिष्ठति।
देवान्यथायथं सर्वान् निवेश्य स्वेषु रश्मिषु ॥६३॥
एतद्भूतेषु लोकेषु अग्निभूतं स्थितं त्रिधा।
ऋषयो गीर्भिरर्चन्ति व्यंजितं नामभिस्त्रिभिः॥६३॥
बृहद्देवता १।

जो अग्नि सूर्य रूपसे द्युलोकमें है उसीकी एक-एक चिनगारी प्रत्येक व्यक्तिके उदरमें धधक रही है—

तिष्ठत्येष हि भूतानां जठरे जठरे ज्वलन्
(बृहद्देवता, १।६५)

निरुक्तके अनुसार अग्नि-वायु-सूर्य एक ही मूलभूत प्रजापतिकी आत्मा हैं (आत्मा सर्वदेवस्य, निरुक्त, ७।४, बृहद्देवता १।७३)।

यज्ञके कर्मकाण्डमें एक ही अग्नि गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन तीन नामोंसे अभिहित होती है जिसे अग्नित्रेता कहते हैं। इन तीन अग्नियोंके समकक्ष अन्य त्रिक इस प्रकार हैं- पंचभूत (वाक्)- प्राण और मन, पृथिवी-अंतरिक्ष और द्यौः, माता-पुत्र और पिता इत्यादि। ये ही तो अग्निके तीन सत्य और तीन जन्म हैं—

त्रिरस्य ता परमा सन्ति सत्या
स्पार्हा देवस्य जनिमान्यग्नेः। (ऋ. ४।१।७)

इन्हीं तीन रूपोंको दृष्टिमें रखकर यह प्रश्न पूछा गया है। कितनी अग्नियां है? कितने सूर्य हैं?

कत्यग्नयः कति सूर्यासः, (ऋ. १०।८८।१८)

सूर्यको बृहत् अग्निका मुख क्यों कहा गया? क्या सूर्य और अग्निमें कोई अन्तर है? इन प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिए वैदिक तपस्के मूल अर्थको समझना होगा। वेदकी दृष्टिसे सृष्टिका मूल तपस् है। यह तपस् कितना बृहत् या महान् था, इसकी कोई कल्पना नहीं हो सकती। उसीको अभीद्ध तप कहा जाता है, जिससे सृष्टिके उत्पादक मूल तत्व अग्नि और सोम अविर्भावमें आए (ऋ. १०।१९०।१)। वह तप स्वयं देव प्रजापतिका तप था। वही उनके मनका ध्यान

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और प्राणकी क्रिया थी। उसे ही ब्राह्मण ग्रंथोंमें 'ऐक्षत' 'अतप्यत्' 'अश्राम्यत्' कहा गया है। दूसरे शब्दोंमें उस तपको 'देवौष्णि' कहा गया है, अर्थात् मूलभूत देव तत्वसे उत्पन्न उष्णता या ताप ही तप है। वही उष्णता पुरुषके रूपमें जन्म लेती है। पुरुषके भीतर जो उष्णता है, वही अग्नि वैश्वानर है। प्राणको उपांशु और अपानको अंतर्याम कहते हैं। इन दोनोंके टकरानेसे जो उष्णता, गर्मी या हरारत उत्पन्न होती है, वही दिव्य उष्णता वैश्वानर अग्निके रूपमें प्रत्येक पुरुषमें व्याप्त है। उसके अतिरिक्त पुरुष और कुछ नहीं है—

प्राणापानौ उपांश्वन्तर्यामौ (ऐतरेय ब्रा. २।२१)
अथोपाꣳशुरन्तर्याममग्निभवत्यन्तर्याम उपाꣳशुं च। एतयोरन्तराले वौष्ण्यं प्रासुवत्। यदौष्ण्यं स पुरुषः। अथ यः पुरुषः सोऽग्निर्वैश्वानरः (मैत्रायणी उपनिषद् २।६)

इस प्रकार विराट् विश्वमें देवकी वह उष्णता सूर्यके रूपमें और मनुष्यमें वैश्वानरके रूपमें प्रत्यक्ष है। वैश्वानर कौनसी अग्नि है, इसका उत्तर है—

अयं अग्निर्वैश्वानरो योऽयं अन्तः पुरुषे येनेदमन्नं पच्यते। (मैत्रायणी २।६)

अर्थात् पुरुषके भीतर जो अग्नि अन्नको पचाकर सप्त धातुओंके निर्माण द्वारा शरीरकी विष्टति है, वही जठराग्नि या प्राणाग्नि वैश्वानरका रूप है। जो विराट् विश्वमें सूर्य है, उसीकी एक रश्मि मनुष्यमें है। सृष्टिका यही मूल नियम है 'यो असौ पुरुषः सोऽहं अस्मि' जो वह पुरुष है, वही मैं हूं (ईश. उप.) इसीको ऋग्वेदमें कहा है 'वैश्वानरो यतते सूर्येण' (१।६८।१), अर्थात् पृथ्वीके वैश्वानर और द्युलोकके सूर्य अथवा पुरुषमें प्रविष्ट वैश्वानर और विराट् विश्वके केन्द्रमें स्थित सूर्य इन दोनोंमें परस्पर स्पर्धाका सम्बन्ध है। यह स्पर्धा प्राणन् क्रियाके रूपमें है।

जैसे लोहारकी धोकनी अग्निको प्रदीप्त करती या चिताती है, वैसे ही विश्वमें सूर्यके संधमनसे पुरुषकी वैश्वानर अग्निका संधमन हो रहा है। सूर्य स्थूल अग्निके गोलेके रूपमें हमें दिखलाई देता है, पर वह विराट् विश्वके निर्माता प्रजापतिके विज्ञान चेतना द्वारा अस्तित्वमें आया है, अतएव वैदिक दृष्टिसे यह दृश्य सूर्य उस अदृश्य प्रजापतिके विज्ञानका प्रतीक है। प्रजापतिका मानस चिन्तन या उसका महत् बुद्धि तत्व, जिसे विज्ञान कहते हैं, वही सूर्य है। विज्ञानका ही पर्याय 'संज्ञा' या 'चिति तत्व' है, जिसे आख्यानोंमें 'सूर्यकी पत्नी' कहा गया है। उसी सूर्यका प्रतिबिम्ब मानों प्रत्येक प्राणि केन्द्रमें आ रहा है।

वैदिक भाषामें सूर्यको आतप या धूप और भूतोंमें पडने वाले उसके प्रतिबिम्बको छाया कहते हैं। दिव्य मानसी सृष्टिमें जो विज्ञान आतपके रूपमें है, वही भूतोंमें छाया हुआ है। ब्रह्मवादी जब मूल प्राणतत्वकी व्याख्या करने लगे, तब छाया और आतप, धूप और छांह इन शब्दोंमें उन्होंने सब कुछ कह डाला। वे ज्ञानी यह जानते थे कि सृष्टिके लिए एक मूल प्राणतत्व पंच प्राणोंमें विभक्त हो रहा है, क्योंकि एकसे सृष्टि नहीं हो सकी, उसे पांच होना पडा—

स एको नाशकत्। स पंचधा आत्मानम् विभज्य उच्यते। यः प्राणः, अपानः, समानः, उदानः व्यान इति। मैत्रा० उप० २।६

इन पंच प्राण रूपी पांच अग्नियोंका स्वरूप जाननेके कारण उन ऋषियोंकी पंचाग्नि संज्ञा हुई। इसी प्रकार जो स्वर्ग्य, दिव्य अग्नि या प्राण था, वही गुह्य अज्ञेय रहस्य होनेके कारण नाचिकेत अग्नि कहलाया। सृष्टिके धरातल पर उसीके तीन रूप हो जाते हैं, मन, प्राण और वाक् (या पंचभूत) इन तीनको ही यज्ञकी त्रेताग्नि कहा जाता है। इस प्रकार एक नचिकेत अग्नि, जिसके रहस्यको कोई नहीं जानता और न कोई कह पाया है।

को अद्धा वेद कः इह प्रवोचत्। ऋ. १०।१२९।६

तीन रूपोंमें बंटकर त्रिणाचिकेत बन जाती है। इन तीन अग्नियोंके रहस्यको जाननेवाले विद्वान् त्रिणाचिकेत नामसे प्रसिद्ध थे। ऐसे ब्रह्म विज्ञानी पुरुषोंकी दृष्टिमें सृष्टिका विराट् मूल तत्व विज्ञान रूपी सूर्यके आतपके समान है और भूतके धरातल पर उस विज्ञानकी जो अभिव्यक्ति है वही छाया है। दिनका प्रतीक आतप और रात्रिका प्रतीक छाया है। दिनमें जो सूर्य है उसीका तेज रात्रिके समय अग्निमें प्रविष्ट हो जाता है। विराट् परमेष्ठीका संकेत दिन और भूतगत व्यष्टिका संकेत छाया है। यही सूर्य और अग्निका सम्बन्ध है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सूर्य सहस्ररश्मि है। अग्नि उसका शतधा वर्तमान रूप है। अनंत और अपरिमितको 'सहस्र' एवं परिमित और सान्तको 'शत' कहा जाता है। जो सहस्रात्मा अनंत प्राण है वही पृथक् पृथक् भूतोंमें सैकड़ों प्रकारसे दिखाई पड़ रहा है। सूर्य और अग्नि तत्वतः एक होते हुए भी भिन्न हैं। सूर्य अमृत और अग्नि मर्त्य है। सूर्य सृष्टिके आदिसे अंत तक एक समान रहता है। किन्तु अग्निका जीवन प्रकट होता और लुप्त होता रहता है। अग्निके संमिधनकी मर्यादा समिधाओंके परिणाम पर निर्भर है। जब तक ईंधन तब तक अग्निका प्रज्वलन। यही अग्निका परिमित और सान्त रूप है। किन्तु सूर्य अमृत है क्योंकि उसे परमेष्ठीका 'ऋत' या 'सोम' निरंतर प्राप्त होता रहता है। उस परमेष्ठीके गर्भमें कोटानुकोटि सूर्योंका वाप निहित है। वह सोमका महान् समुद्र है। पारमेष्ठ्य सोमको ही 'ऋत' कहते हैं। उस सोम समुद्रके मंथनसे जो उष्णता उत्पन्न होती है वही अग्नि है। उसे ही 'अभीद्ध तप' या 'अग्रज तप' (बृहद्देवता, २।५३) या 'ऊष्मा' (आरण्यकपर्व २११।४) कहा गया है। उसीकी एक चिनगारी यह सूर्य है और ऐसे कोटि-कोटि सूर्य उस मूल प्रदीप्त अग्निके विस्फुलिंगोंके समान अनंत आकाशमें भरे हुए हैं।

उस मूल मंथनात्मक तपका स्वरूप गति है। गति और आगतिके द्वन्द्वसे ही मंथन होता है। गतिकी संज्ञा रजस् और अक्षर भी हैं। यह समस्त विश्व 'रजस्' या 'गति' का विमान कहा गया है। विमानका अर्थ है मापना। जैसे स्थापित गृहविन्यासके लिए सूत्रमापन करता है वैसे ही त्वष्टा या विश्वकर्मा प्रजापतिने विश्वके विन्यासके लिए स्वयं सूत्रात्मा बनकर लोकोंका सूत्रमापन या विन्यास किया है। यही लोक विन्यास सृष्टि है। मंथन, घर्षण, क्षोभण, वेपन, स्पंदन, कंपन, जागरण, प्राणन, संधमन, क्रंदन, रुदन, वमन, श्वसन, क्रमण, क्षरण, तक्षण, हवन, सवन, यजन, विमान आदि अनेक शब्दोंसे विश्वकी एक मूलभूत गत्यात्मक प्रक्रियाकी ओर संकेत पाया जाता है। क्षोभ ही विश्वका मूल है। क्षोभको ही रुद्रका 'मन्यु' कहा गया है।

एक अविचाली मूल स्थाणुतत्व 'एकरुद्र' है। किन्तु सृष्टिके लिए उसीके असंख्यात सहस्र रूप हो जाते हैं। वे ही रुद्रके 'प्रमथ' या 'गण' हैं। एक-एक शरीरमें एक एक प्रमथका निवास है। 'अग्निर्वै रुद्रः' यह मूलभूत परिभाषा है अग्नि ही रुद्र है। जैसा ऋग्वेदमें कहा है 'त्वमू ष्वग्ने रुद्रः' (२।१।६) अग्निको 'सहसः सूनुः' अर्थात् बलका पुत्र कहा गया है (ऋग्वेद ३।२५।५)। यह जो दो अरणियोंका मन्थन है वही बल है। बलका रूप गति है। रसका रूप स्थिति या शान्ति है। स्थितिके धरातल पर गतिका जन्म होता है। इसी प्रकार रसमें बलका उदय है। आपः या जल रसका रूप है। उस जलके मन्थनसे जिस बलका जन्म होता है वही अग्नि है। अतएव उसे 'सहसः पुत्र' कहा जाता है। दो अरणियोंके मन्थन या घर्षणसे अग्नि उत्पन्न होती है। पिता और माता यही दो अरणियां हैं। अग्नि उनका पुत्र है।

सोमके समुद्रसे जिस 'अभीद्ध तप' या अग्निका जन्म होता है उसके लिए वेदोंमें 'आपः' शब्द है। उन्हीं आपः के लिए मनुने कहा है—

स्वयंभू प्रजापतिने सर्व प्रथम आपः तत्वकी सृष्टि की और उसने अपना बीज डाला। उसके फलस्वरूप 'हिरण्यगर्भ नारायण' का जन्म हुआ। उसीकी संज्ञा सूर्य या अग्नि है। जैसे नारसंज्ञक जलोंसे जन्म लेनेके कारण 'नारायण' संज्ञा होती है वैसे ही अग्निकी सुप्रसिद्ध संज्ञा 'अपांनपात्' है। अग्निको 'अपांगर्भः' भी कहा गया है (ऋग्वेद ३।५।३, ३।१२।१३)। वह जलोंके भीतर समीध्य होता है (अप्सु अजस्रमिंधानः। ऋग्वेद १०।४५।१)।

अग्नि मातारूपी जलोंकी गोदमें उत्पन्न होनेवाला 'वृषा' या 'वृषभ' है (ऋग्वेद १०।८।१)। जल रूप सोम और अग्निका सम्बन्ध वेदोंमें सर्वत्र आया है। इस सम्बन्धका प्रत्यक्ष रूप है जलसे भरे हुए मेघोंमें विद्युत् का जन्म। किन्तु इसमें सृष्टिका गम्भीर संकेत है। यह एक संकेत है जैसा ऊपर कहा है जलकी संज्ञा आपः आती है किन्तु यहां आपः का अर्थ स्थूल जलोंसे नहीं है। स्थूल जलोंका प्रादुर्भाव तो सृष्टि क्रममें बहुत बादको हुआ। यहां आपः का तात्पर्य विश्वके मूल कारणसे है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है—'यद् आप्नोत् तस्माद् आपः।'

उस मूल कारणको आपः इसलिए कहते हैं कि यह प्रजापतिके मनमें व्याप्त हो गया। प्रजापतिने जैसे ही सृष्टि-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

की इच्छा की अर्थात् मनसे विश्वमें रचनाका चिंतन किया, वैसे ही जितना विराट् उनका मनस् तत्व या बुद्धि या महत् तत्व था उसकी ही व्यापकता विश्वके मूल कारणमें भी आ गई। इस व्याप्ति धर्मके कारण ही उसे आपः कहा जाता है। यह व्याख्या महत्वपूर्ण है और विश्वके मूलभूत साम्यावस्थाकी ओर संकेत करती है जो सब प्रकारसे क्षोभ-हीन प्रशान्त अवस्था थी। उसे ही 'समुद्र' की संज्ञा दी जाती है।

स्वयंभू प्रजापतिकी संज्ञा 'नर' या 'पिता' है (बीजप्रद पिता)। उनकी अपेक्षा, उन्हींसे उत्पन्न होने-वाला जो महत् तत्व है उसे विराज, प्रधान, प्रकृति, अक्षर योनि आदि कई नामोंसे पुकारा गया है। वही माता है और उसी अनन्त प्रकृतिकी एक संज्ञा 'अदिति' भी है। इसी माताको 'नार' भी कहा जाता है क्योंकि नर रूप स्वयंभूका ही विकास है (आपो नारा इति प्रोक्ताः) नर और नार, माता और पिता, स्वयंभू और परमेष्ठी, पुरुष और प्रकृति, अव्यय और अक्षर इन तत्वोंके सम्मि-लनसे जो एक नया तत्व उत्पन्न होता है, वह 'नारायण' अग्नि' और 'हिरण्यगर्भ' हो जाता है। उसीका मूर्त रूप 'सूर्य' है जिसे 'विराज गौ' का 'वत्स' या पुत्र भी कहते हैं।

वस्तुतः अग्नि पिता और सोम माता है। पिताके बीजा-धानसे माताके जिस गर्भकी उत्पत्ति होती है वह कुमार या पुत्र ही 'आत्मा वै जायते' नियमके अनुसार पिताका ही हू--बहू रूप होता है। अतएव उसकी संज्ञा भी अग्नि होती है। जैसे स्वयंभू अव्यक्त अग्नि है, वैसे ही सूर्य भी व्यक्त अग्नि है सूर्य द्युलोककी अग्नि है और उसीका अंश पृथ्वी लोककी भौतिक और मर्त्य लोक अग्नि है। जब हम अग्नि शब्दका उच्चारण करते हैं तो हमारा ध्यान काष्ठ या समिधासे जलनेवाली अग्निकी ओर जाता है। वह प्रतीक भी ठीक है किन्तु हमारा वास्तविक लक्ष्य उस प्राणाग्निकी ओर होता है जो प्रत्येक व्यक्तिमें वास्तविक जीवनका केन्द्र है। उसे ही 'वैश्वानर' और 'नृषद्' भी कहते है। वेदोंमें 'वृषभश्च धेनुः' इस प्रतीकका उल्लेख आता है। सृष्टि विद्यामें महत् प्रकृतिको 'अदिति' 'विराज्' और 'काम-दुघा धेनु' कहते हैं।

यह विश्व प्रजापतिका कामप्रयज्ञ है अर्थात् प्रजापतिकी कामना इस विश्वके रूपमें मूर्त हो रही है। सिसृक्षा या सृष्टिकी इच्छा प्रजापतिके मनका बीज है उसी बीजके अंकुरित होनेसे प्राणात्मक शक्ति इस विश्वमें प्रकट और व्याप्त हो रही है। प्रजापति इस विश्वरूपी छन्दका देवता है। उसका मन बीज है और सृष्टिकी कामना उस बीजसे उत्पन्न शक्ति है। इस विराज् गौको गर्भित करनेवाला जो वृषभ तत्व है वही स्वयंभू है। वह महान् देव है। उसे ही नामान्तरसे इन्द्र और अग्नि एवं प्राण भी कहते हैं। वही शाश्वत् ब्रह्म है।

जैसा मनुने कहा है—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेकेऽपरे प्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम्॥

विश्वमें जो चेतन शक्ति या प्राण है उसका आधान स्व-यंभू रूप वृषभके द्वारा विराज् धेनुमें होता है उसे ही महद् ब्रह्म या योनि कहा है—

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत॥
(गीता, १४,३)

महत् या बुद्धि तत्व माता है। स्वयंभू उसका बीजप्रद पिता है। वह नर या पुरुष सहस्रशीर्षा है। सहस्रका अर्थ अनन्त है। शीर्ष विज्ञानका प्रतीक है। विज्ञान ही चेतना और मन है। अनन्त स्वयंभू पुरुषमें अनन्त विज्ञानोंका स्रोत है। एक-एक विश्वका जन्म हो रहा है। प्रत्येक विश्व-का केन्द्र अनिरुक्त सहस्रशीर्षा प्रजापतिका मनु है। उस मनुको ही मन कहते हैं।

विश्वमें सर्व प्रथम मनका जन्म होता है।

कामस्तदग्रे समवर्ततााधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत्। (ऋग्वेद १०।१२९।४)

प्रत्येक विश्वका एक एक अधिष्ठात्रि शासक या अंतर्यामी देवता मनु कहलाता है। उस मनुके अनुशासनसे जो कालके चौदह विवर्त होते हैं वे ही चौदह मन्वन्तर हैं। उनमें काल एक चक्र है अतएव उसका आधा भाग उद्ग्राम या उत्सर्पिणीकाल कहलाता है और शेष आधा भाग निग्राम या अवसर्पिणीकाल। उद्ग्रामके प्रत्येक विन्दुका प्रतियोगी निग्राममें विद्यमान है। यदि चक्रके ऊपर उठने-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वाले आधे भागको धूप कहें तो उसके समकक्ष नीचे जाने-वाला भाग उसकी छांह कहलायेगा। सृष्टि और प्रलयकी धूप और छांह कालचक्रके ही दो अर्धांश हैं जिनसे चक्रका स्वरूप पूरा होता है। इसे ही उपनिषद्में आतप और छाया कहा है। आतप या धूपकी संज्ञा शुक्ल रजस् है और छाया की कृष्ण रजस्। शुक्ल और कृष्ण ये ही दो रजस् अक्षर या गतिके रूप हैं जिनसे काल चक्रका परिभ्रमण सम्भव होता है। कहा है—

अहश्च कृष्णमहरर्जुनञ्च
विवर्तेते रजसी चक्रियेव।
वैश्वानरो जायमानो न राजा
वातिरज्ज्योतिरग्निस्तमांसि। (ऋग्वेद ६।९।१)

यह एक चमत्कार है कि शुक्ल और कृष्ण रजसके दो रूपों द्वारा चक्रमें परिभ्रमणकी क्षमता उत्पन्न होती है। उससे जिस वैश्वानर अग्निका जन्म होता है वह अपनी ज्योतिके साथ तमको भी लिए हुए है अर्थात् ज्योति और तम इन दोनोंका विभाग गतिमें है। अग्नि स्वयं ज्योति रूप है किन्तु जैसे ही भूतोंके साथ उसका सम्पर्क होता है तुरन्त तम या छाया आ जाती है। ज्योति जीवन है और छाया मृत्यु है। जीवनके साथ मृत्यु अवश्यम्भावी है। तभी चक्रका पूरा रूप बनता है। ऋग्वेदमें कहा है कि देवमाता अदितिने आठ पुत्रोंको जन्म दिया। उनमेंसे सात आदित्य या देव थे और आठवां मरा हुआ अण्डा मार्तण्ड था। अदितिने समझा कि अमर देवता सृष्टि कर सकेंगे अतएव उसने मरे हुए अण्डेको फेंक दिया और देवताओंके पास गई। हर देवोंने कहा कि हम अमर हैं, केवल अमृतसे सृष्टि नहीं होती।

अदितिने समझ लिया कि सृष्टिके लिए जैसे जन्म आवश्यक है वैसे ही मृत्यु भी। ज्योतिके साथ तमकी सत्ता अनिवार्य है। तब वह मार्तण्डके पास गई और उसका आभरण किया अर्थात् जैसे पक्षिणी माता अण्डे सेती है उसी प्रकार देवमाता अदितिने अपने आठवें पुत्र मार्तण्डको इस आशासे सेया कि इसका सम्बन्ध मृत्युसे भी है। अतएव जन्म और मरण दोनोंका चक्र इससे चल सकेगा। यही हुआ। यह जो सूर्य है उसका जो अंश ऊपर है वह अमृत और जो नीचे वह मृत्यु रूप है। एक ओर अपरिमित काल और दूसरी ओर परिमित काल है (परिमित कालावधिः मृत्युः) कालकी परिमित अवधि ही मृत्यु है। इन दो रूपोंको ही शुक्ल और कृष्ण रजस् या ज्योति और तम कहते हैं। जैसे सूर्यमें वैसे अग्निमें भी ये दोनों हैं।

स्वयंभू रूप सहस्रशीर्षा पुरुषसे विराट्का जन्म होता है। वह विराट् मार्तण्ड या मरा हुआ अण्डा है किन्तु उस अण्डेमें स्वयंभू प्रजापति स्वयं प्रवेश करते हैं क्योंकि सृष्टिका यह नियम है कि जो जिसे रचता है वह उसमें प्रविष्ट हो जाता है— तत्सृष्ट्वा तदेव प्राविशत्। ऋग्वेदमें कहा है जो प्रथम छन्द या पहला सृजन तत्त्व था वह बादके अपनेमेंसे विकसित होनेवाले सब रूपोंमें समा जाता है। यही आत्मा वै जायते पुत्रः का नियम है।

क्या हम नहीं देखते कि एक आमकी गुठलीसे जो वृक्ष उत्पन्न होकर फल उत्पन्न होता है उस फलके बीजमें पहला बीज अपने सब शक्तियों और सम्भावनाओंको लिये हुए समाविष्ट रहता है। इसी प्रकार स्वयंभू प्रजापतिमें जो सृष्टिका बीज था जिसे ऋग्वेदमें 'भुवनस्य रेतः' कहा है (१।१६४।३६) उसमें मन, प्राण और वाक् (पंचभूत) ये तीन प्रकारकी अग्नियां समाविष्ट थीं और वे ही इस विश्व रूपी यज्ञमें अग्नि त्रेताके रूपमें प्रकट हो रही हैं। उन्हें ही अग्नि, वायु और आदित्य कहते हैं। वे ही तीन लोकोंके तीन संचालक नर या प्राण हैं, जिनकी समष्टिकी संज्ञा वैश्वानर है।

उस विराट् संज्ञक अण्डेके भीतर स्वयंभू प्रजापतिका बीज था। बीजको 'रेत' या 'हिरण्य' भी कहा है। वह हिरण्य उस अण्डेके गर्भमें था। वही तो जीवनका लक्षण था। अतएव यद्यपि अण्ड रूपमें वह मृत था किन्तु उसी अण्डेसे मार्तण्ड या सूर्यका जन्म हुआ। उस अण्डेके भीतर भरे हुए जलमें मानो हिरण्यगर्भ नारायण शयन कर रहे थे। नारायण ही प्राण तत्त्व या अग्निका रूप है। जब सृष्टिका समय आया तब नारायणका जागरण हुआ हुआ और अण्डेके भीतर सृष्ट्युन्मुखी जितने तत्त्व थे वे सब सक्रिय हो गये। विराज् महत् या अण्डेके भीतरसे जन्म लेनेवाले नारायण या हिरण्यगर्भ पुरुषको ही वेदोंमें वैराज पुरुष कहा है। (ततो विराडजायत, विराजो अधि पुरुषः)। ये ही पुराणोंके वैराज मनु हैं। यहां पुरुषके दो रूप है- एक सहस्रशीर्षा पुरुष और दूसरा महिमा पुरुष या वैराज पुरुष या दशाङ्गुल पुरुष।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह विश्व एक यज्ञ है जिसमें स्वयं प्रजापति पशु बने हैं। पशुके आलम्भनके बिना सोम यज्ञ सिद्ध नहीं होता। प्रत्येक पशु काल रूपी यूपसे बंधा हुआ है। ब्रह्मपुराणमें आया है कि जो नित्यकाल है वही विश्वयज्ञका यूप है और जो स्वयं इसका रचयिता पुरुष है वही अपने ही आलम्भन के लिए पशु बना है। पुरुष सहस्रशीर्षा है। प्रत्येक यज्ञमें उसीके एक एक मस्तककी आहुति हो रही है। आहुति लेने वाला शमिता स्वयं 'मृत्यु' है (मृत्युः शमिता, ताण्ड्य ब्राह्मण २५।१८।४) सृष्टिकी रचना भी विचित्र है। एकका अनेक भावमें आना और अनेकका एक सूत्रमें ग्रथित होना यह सृष्टिका मूल नियम है। यहां एक बहुधा भावमें आया है और जो नाना भाव हैं वे एकमें पिरोये हुए हैं अतएव विराट् पुरुषके यज्ञमें उसीके अनेक अंगोंसे अनेक अनेक लोक बनते हैं। प्रत्येक लोकका एक एक अधिष्ठात्री देवता है जिसे लोकी कहते हैं। जितने लोक और उनके लोकी या लोकपाल हैं वे सब अलग रहकर प्राण या जीवनकी सृष्टि नहीं कर सकते। इसके लिये उनका फिर एक होना आवश्यक है।

नाना भावकी संज्ञा 'विराट्' है और उस विराट्से पुनः एक प्रलयका जन्म यही बहुधा भावका फिर एक होना है। शतपथ ब्राह्मणमें कहा है कि शरीरकी रचनामें प्रत्येक इन्द्रियके लिए एक एक प्रकारके रसकी उत्पत्ति हुई। जिस रससे आंखका नियंत्रण होता हैं वह घ्राण या कानके रससे भिन्न है तभी तो प्रत्येकके कार्य और धर्म अलग हैं किन्तु इस पृथक् भाव या खण्ड भावसे काम नहीं चला। अतः सब रसोंके एक एक अंश शिर या मस्तिष्कमें मिलकर एकत्र हो गये, एकमें मिल गये।

रसोंका यह एकत्र आश्रयण या संग्रह जहां होता है उसे परोक्ष भाषामें 'शिर' या 'शीर्ष' कहते हैं उस शीर्षमें ही उस पुरुषकी वास्तविक 'श्री' निवास करती है। मनुष्यके और सब अंगोंमें बाह्य 'लक्ष्मी' का रूप है किन्तु मन या शिरमें आभ्यन्तर 'श्री' निवास करती है। श्री और लक्ष्मी ये ही दोनों पुरुष यज्ञके नारायण पुरुषकी दो पत्नियां हैं। श्री प्राणका सौन्दर्य है एवं भूतोंका लक्ष्मी। हम ऊपर अग्निके जिन दो स्वरूपोंकी चर्चा करते आये हैं जिन्हें शुक्ल और कृष्ण, ज्योति और तम कहा है वे ही श्री और लक्ष्मी या देव और भूतके रूप हैं।

पुरुषके नाना भावको एकमें अनुस्यूत करनेवाला जो तन्तु है वही 'सूत्रात्मा' है। उसे ही ऋग्वेदमें 'शौचीक अग्नि' कहा है अर्थात् वह प्राणाग्नि जो शरीरके सब अवान्तर प्राणों या अंगोंका सूचन करके उन्हें एक वस्तुके रूपमें सीती है। यह शरीर ही वस्त्र है जिसे शौचीक अग्नि प्रतिक्षण तैयार कर रही है। इसे ही वस्त्रका वयन या बुनना भी कहा गया है। जो जल रूपी सोमात्मक मातायें हैं वे ही शौचीक अग्निकी सहायतासे इस शरीरको सी रही हैं या अग्निके तंत्रायी धर्मकी सहायतासे इस विलक्षण वस्त्रका वयन कर रही हैं (वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ऋग्वेद ५।४७।६)।

इसी शौचीक अग्निको पुराणोंमें बडवाग्नि कहा है जो जलोंके भीतर रहती है और समुद्रके जलका पान करती है जिसे हमने ऊपर समुद्र और आपः कहा है उसी सोमात्मक समुद्रके तक्षणसे बडवाग्नि या शौचीक अग्नि शरीर रचनाका अपना कार्य करती है। सलिलोंका तक्षण, वस्त्रोंका वयन, रूपोंका पिशन ये सब ऋग्वेदकी परिभाषायें हैं जिनका संकेत समझने योग्य है।

प्राणतत्त्व पहले अपने केन्द्रमें प्रशान्त रहता है वही सृष्टिके लिए जब सक्रिय होता है तब उसे 'जागरण' कहते हैं। यही नारायण पुरुषका समुद्रके भीतर सोना और जागना है। 'सम्भृतलोकान् पुरुषोभिशेते।' इसके अनुसार जब वह पुरुष बाह्य लोकोंको अपनी कुक्षिमें खींच लेता है तब उसे संहार या निद्रा काल कहते हैं। उस समय मारकण्डेय ऋषि जो कालके प्रतीक हैं उनकी कुक्षिमें प्रवेश कर जाते हैं अतएव कालका सक्रिय व्यापार ठप्प पड जाता है किन्तु जब नारायण पुरुषके मनमें पुनः सृष्टिकी इच्छा होती है तब कालात्मक मारकण्डेय पुनः उनके मुखसे बाहर आते हैं और वही उस अगाध और गहन अम्भो समुद्रमें उस नारायणके ही बाल रूपमें दर्शन करते हैं। नारायणका वह बालभाव अग्निका पुत्र कुमार है। 'अग्नेः अग्निरजायत' अग्निसे अग्निका जन्म होता है, प्राणसे प्राणकी शृंखला चलती है। सृष्टिके पूर्वकी जो अग्नि थी वही सृष्टिमें पुनः आती है। वही अग्निका पुत्र कुमार है।

जिसे पुराणोंके उपाख्यानोंमें 'स्कन्द' कहा गया है। एक 'गणपति' और दूसरे 'स्कन्द' ये ही दो रुद्र पुत्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं। अग्नि और सोम इन दोनोंका सम्मिलित रूप रुद्रका नरनारी वपु या शिवका अर्धनारीश्वर रूप है। विराज् अण्डके भीतर दोनोंकी सत्ता रहती है। उसका जो आग्नेय अंश है उससे अग्नि पुत्र स्कन्दका जन्म होता है। उसका जो सौम्य या जलीय अंश है उससे गणपतिका जन्म होता है जिन्हें ब्रह्मणस्पति सोमका अवतार माना गया है। ब्रह्मणस्पति सोम ही महत् या समुद्र है उसीसे सूर्यका जन्म होता है। देवोंने जब सृष्टिका नृत्य आरम्भ किया तो समुद्रमें छिपे हुए सूर्यको ढूंढ निकाला—

अत्रा समुद्र आगूळ्ह सूर्यमजभर्तन।
ऋग्वेद १०।७२।६-७

वह जो समुद्रसे प्रकट हुआ सूर्य है वही तो बृहत् अग्नि का ज्योतिमान् मुख है। वही यज्ञ है, वही सत्य है, वही हिरण्यगर्भ है, वही प्राण है, वही इन्द्र है, वही रुद्र है और वही अग्नि या रुद्रका पुत्र कुमार है। मारकण्डेय या कालतत्त्वको सर्वप्रथम इसी कुमार या बालभावका दर्शन होता है। यही अण्डके भीतर छिपा हुआ बीज, भुवनका 'रेत' या 'हिरण्य' है जिससे विश्वरूपी महान् अश्वत्थका जन्म होता है। बालक क्या है? इस प्रश्नका यही उत्तर है कि प्रकृतिने प्राणियोंके जन्म विकास और वृद्धिकी जो विचित्र युक्ति बनायी है वही बालक रूप मूर्त होकर प्रकट होती है। बीजसे फिर बीजका जन्म यही सृष्टिका चक्र है। बालकसे युवा और युवासे पुनः बालकका जन्म पितासे पुत्र और पुत्रसे पिताका आविर्भाव यही चक्रकी गति है। स्त्री और पुरुष, कुमार और कुमारी ये दोनों एक ही तथ्यके दो मुख हैं। जो इस भेदको जानता है उसे पिताका पिता कहा गया है—

यः ईं विजानात् स पितुः पितासत्।
(ऋग्वेद १।१६४।१६)

अण्ड या जलोंके भीतर जो हिरण्य या अग्निका निवास है, उसे सब नहीं देख पाते। वस्तुतः विराट् रूपमें जो महत् योनि या माता तत्त्व है उसके कुक्षिमें पुरुष गर्भित है। वह भीतर अजन्मा होते हुए भी नाना रूपोंमें जन्म लेता है (अन्तरजायमानो बहुधाभिजायते)। प्रकृतिके इस रहस्यको केवल प्रज्ञाके नेत्रसे देखा जा सकता है। प्रकृतिके भौतिक रूपको देखनेवाली भौतिक आंखसे उस मूल प्राणात्मक बीजको नहीं देखा जा सकता।

स्त्रियः सतीस्तां मे पुंस आहुः
पश्यदक्षण्वान् नो विचेतदन्धः।
(ऋग्वेद १।१६४।१६)

भूतोंकी छानबीन करनेवाली और उनके भीतर छिपे हुए विज्ञानात्मक प्राणको देखनेवाली दृष्टि या बुद्धिका यही महान् अन्तर है। भूतोंमें प्राणकी सत्ता होते हुए भी बिना ऋषि प्रज्ञाके उसका दर्शन नहीं होता। आधुनिक ज्ञान-विज्ञानकी यह विचित्र स्थिति है।

आपः नामक जिस सोम समुद्रका उल्लेख ऊपर आया है उसके दो रूप हैं। एक सृष्टिसे पूर्व और दूसरा सृष्टिके लिए उन्मुख। जो सृष्टिसे पूर्वकी अवस्था है वह केवल आपः समुद्र है किन्तु जैसे ही सृष्टिके लिए स्वयंभू बीजप्रद पिताके रूपमें उसे गर्भित करता है वैसे ही वह क्षीर समुद्र बन जाता है।, 'नीरका क्षीरमें परिवर्तन' यही सृष्टि है। बालक जन्मसे और गर्भ धारणसे पूर्व जो माताका रूप है, वह जलके समुद्रकी भांति है, किन्तु वही माता जब गर्भित होती है, तभीसे जलका समुद्र क्षीर समुद्रमें परिवर्तित होने लगता है। दूध मातृत्वका प्रतीक है कोई भी माता हो बिना गर्भित हुए वह बालकको जन्म नहीं देती और बिना प्रसवके दुग्धका जन्म नहीं होता। प्रश्न हो सकता है कि जल और दुग्धमें क्या अन्तर है। जलमें स्नेह या घृत नहीं है पर दूधमें वह है जिसके रोम-रोममें घृतके असंख्य कण व्याप्त हो गये हैं। घृतके इन सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणोंको ऋग्वेदमें 'घी की फुहार' (पृषदाज्यं ऋग्वेद १०।६०।८) कहा गया है।

जब प्रजापतिका विश्वरूपी सर्वहुत यज्ञ आरम्भ होता है तो सर्व प्रथम सोमके समुद्रमें घी की फुहार छा जाती है। घृत ही तो रेत है (रेतो वै आज्यं) और घृत ही अग्निका साक्षात्रूप है (एतद् वै प्रत्यक्षात् यज्ञरूपं यद् घृतम्' शतपथ १२।८।२।१५ आग्नेयं वै घृतं, शतपथ ८।४।१।४१ तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।९।६ एतद् वा अग्नेः प्रियं धाम यद् घृतम्, तैत्तिरीय ब्राह्मण १।१।९।६, १।४।४।४, तैत्तिरीय संहिता ६।१।७।१) जो अग्नि पानीसे शान्त होती है वही घीसे भभक उठती है। घृतका प्रत्येक कण अग्निका ही जमा हुआ रूप है। वह सर्वथा अग्निमें परिवर्तित हो जाता है और अपनी चिकनाईसे शक्तिको जन्म देता

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है। इस घृत रूपी रेतका एक एक कण एक एक बालक या वा प्राणि केन्द्रके उत्पादनकी क्षमता रखता है।

विश्वरूपी विराट् गौमें जो अनन्त जनयित्री शक्ति विद्यमान है उसका कारण यही है कि शम्भुने अपने प्राण, हिरण्य या रेतका आधान माताके गर्भमें किया है। वही हिरण्यगर्भ या अपां गर्भ है जो अग्निका ही रूप है। घृतको संस्कृतमें स्नेह भी कहा जाता है। वत्सके लिए माताके हृदयका स्नेह दूधमें मिले हुए घृतके रूपमें प्रकट होता है। जो माता बालकके लिए अपने स्तनोंमें दुग्धको उत्पन्न करती है उसीके हृदयका स्नेह या रस जलको दुग्धमें परिवर्तित कर देता है। यह मातृत्वकी विलक्षण रसायनी प्रक्रिया है, जिसका रहस्य अविदित है। इस दृष्टिसे वेदोंमें विराट् प्रकृतिको गौ कहा गया है जिसके दुग्धसे ऋषि, देवता, पितर, मनुष्य और असुर ये पंचविध प्राण तृप्त होते हैं।

इस प्रकार सोम समुद्रको क्षीर सागरके रूपमें परिवर्तित करनेका श्रेय अग्नि या प्राणको है। यही सोम और अग्निका सम्मिलन है। इसीसे अग्नि सोमात्मक जगत् और अग्नि सोमीय पशुका जन्म होता है। ऋग्वेदमें इसे ही (वृषभश्च धेनुः) इस सूत्र द्वारा प्रकट किया गया है। जैसे गौके शरीरमें सब देवोंका निवास कहा जाता है वैसे ही उसके घृतमें भी सब देवता बसते हैं (सर्वदेवत्वं वै घृतं, कौशीतकी ब्राह्मण, २१।४) इस परिभाषाका सूक्ष्म अर्थ समझ लेना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पुरुषमें जो रेत है उसीमें मनुष्य शरीरकी समस्त दिव्य और पार्थिव, मानसिक और भौतिक शक्तियोंका सूक्ष्म निवास है उसी रेतके द्वारा ही तो समस्त शक्तियां जो देवोंके अनेक रूप हैं, बालक या मनुष्यमें आती हैं। जैसा अथर्वमें कहा है– रेतः कृत्वाज्यं देवाः पुरुषमाविशन्, अथर्व. ११।८।२६।

यज्ञवेदिमें घृतकी आहुति और मातृ कुक्षिमें रेतः सिक्ति एक ही अर्थके बोधक हैं (रेतः सिक्तिर्वै घृतं, कौशीतकी ब्राह्मण १६।५)।

ऋषियोंने विराज्, गौ, पयः एवं घृत इन प्रतीकोंमें सृष्टि विद्याके गूढ अर्थोंको भर दिया है। विश्वका जो रत्न वेद है जिसके द्वारा स्वयंभू प्रजापति अपने सर्वहुत यज्ञकी पूर्ति करते हैं वही घृत है जिसका मूल दुग्ध रूपमें द्युलोकसे पृथिवी तक ओषधियोंमें, वनस्पतियोंमें, मनुष्योंमें, पशुओंमें सर्वत्र व्याप्त है। अवश्य ही वैदिक परिभाषाके अनुसार यह घृत ही अग्निका प्रत्यक्ष रूप है। इसकी महिमा और व्याख्या ऋग्वेदके घृत सूक्तमें पाई जाती है (४।५८।१-११) इस सूक्तके पांच देवता है-- अग्निः, सूर्यः, आपः, गावः, घृतस्तुर्तिवाहः। ऊपर जिन विशिष्ट अर्थोंकी व्याख्या की गई है उसकी पृष्ठभूमिमें घृत तत्वके साथ इन पांचों देवताओंका घनिष्ट सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है इसी सूक्तके तीसरे मंत्रमें घृत या रेतके स्रोत अग्निका वर्णन चार सींगोंवाले बैलके रूपमें किया गया है—

चत्वारि शृंगात्रयो अस्य पादाः
द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्यां आविवेश॥

इस मंत्रका चतुः शृंग वृषभ अग्नि या प्राण है। आदित्य भी उसीका रूप है। ऋग्वेदके अनुसार वृषभ और महिषमें अन्तर है। महिषका वर्णन ठीक इससे पहले मंत्रमें किया गया है। महिष शक्तिका वह रूप है जो अरण्यक अर्थात् जंगली या बंधन या नियमसे रहित है। यह प्राणकी वह दशा है जिसे आपः कहते हैं। महिषको भी जल प्रिय है। किन्तु वृषभ वह अवस्था है जिसमें शक्ति नियमित रूपमें अभिव्यक्त होती है। इसी लिए इसे त्रिधाबद्ध कहा गया है।

यह तीन बन्धन तीन लोक, तीन शक्ति, तीन अवस्था, तीन देव आदि जितने त्रिक हैं उन सबमें प्राण रूप अग्निका नियमन करते हैं। त्रिक भाव स्वयं एक छन्द है। गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, उसी त्रिकसे समानान्तर रूप है। त्रिक भाव ही अग्नि त्रेता या मन, प्राण, वाक्का रूप है। इससे अतीत जो पूर्वकी अवस्था है जिसे सहस्र विराट् या अजन्मा कहते हैं वह त्रिकके साथ मिलकर चतुष्पाद ब्रह्मकी परिभाषाको जन्म देती है। वे ही अग्नि रूपी वृषभके चतुः शृंग हैं। चतुर्वेद, चतुर्लोक, चतुर्देव आदि रूपोंमें विश्वकी व्याख्या ब्राह्मण ग्रन्थोंमें पाई जाती है। गोपथ ब्राह्मणमें इसे ही ब्रह्मका चातुष्प्राश्य ओदन कहा है अर्थात् यह ऐसा भात है जिसे चार आदमी मिलकर खाते हैं, अर्थात् अव्यय पुरुष, अक्षर पुरुष और क्षर पुरुष रूपी तीन पुरुष तो सृष्टिके त्रिकसे सम्बन्धित हैं और एक जो इनसे अतीत है वह

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

परात्पर पुरुष कहलाता है। यह चारों अपने-अपने ब्रह्मके रूप हैं और उन्हींके लिए ये चातुष्प्राश्य ब्रह्मौदन है।

ऋग्वेदमें कहा है कि सृष्टिकी मूल गायोंको पणियोंने गुहामें छिपा रक्खा था देवोंने उन्हें मुक्त किया और तब घृतकी धारायें सोमके समुद्रसे उठकर प्रवाहित होने लगीं। जो घृत गौवोंके शरीरमें व्याप्त था वही दुग्ध रूपमें स्फुट होकर प्रवाहित हो चला। उसके एक अंशको इन्द्रने, दूसरेको सूर्यने और तीसरेको वेनने प्रकट किया। इन्द्र मनका प्रतीक है। वह मनस्वान् देव है (ऋग्वेद ८।१२।१)

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्।
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्॥

सूर्य प्राण या अक्षर तत्वका प्रतीक है। मन और प्राण दोनों अव्यक्त रहकर अपनी स्वधा या निजी शक्तिसे वेनको जन्म देते हैं। वेन अग्निकी संज्ञा है। वेनको ऋग्वेदमें पृश्नि गर्भ अर्थात् पृश्नि गौका पुत्र कहा गया है। वह ज्योतिसे आवृत रहता है और कृष्ण एवं शुक्ल रजसूके द्वारा उसका विमान या मापन किया जाता है। आपः या मातृतत्व और सूर्य या पितृतत्वका जहां संगम होता है उस बिन्दु पर जिस प्राण, हिरण्य, अग्निका जन्म होता है उस वेन संज्ञक सप्त वर्णात्मक तेजको ऋषि लोग शिशु या कुमारके रूपमें अपनी बुद्धि रूपी जिह्वासे चाटते हैं—

अयं वेनश्चोदयत् पृश्निगर्भा
ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने।
इममपां संगमे सूर्यस्य
शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति॥
(ऋग्वेद १०।१२३।१)

ज्योतिसे जन्म लेनेवाला वेन स्वयं अग्नि ही है। अग्नि या वेन एक 'रोचना' या 'ज्योति' है (सुरुचो वेन आवः यजुर्वेद १३।३)। यही ब्राह्म रुचि या ब्राह्म ज्योति है जिसे सब देवोंने मिलकर उत्पन्न किया है—

रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे॥
(यजुर्वेद २१।३१)

देवोंने सर्व प्रथम जिस ब्राह्मणी ज्योतिको प्रकट किया वही अग्नि है वही प्राण है। इसीलिए अग्निमें सब देवताओंका निवास माना गया है, जैसे घृत या रेतमें (अग्निः सर्वा देवता, एतरेय ब्राह्मण १।१।२।३) शतपथ० १।६।२।८, सर्व देवत्यो अग्निः शतपथ० ६।१।२।२८, अग्निर्वै सर्वेषां देवानाम् आत्मा) इसी अग्नि या प्राण रूप ब्राह्म ज्योतिको समस्त देव, भूत, असुर, ऋषि, पितर अर्थात् सारा विश्व प्रणाम करता है (नमो रुचाय ब्राह्मणे) यजु० ३१।२०)। वही अग्नि या प्राण सब देवोंका पुरोहित है। उसीके तपसे अन्य सब देव जीवित रहते हैं। वही अग्नि प्रजापतिका साक्षात् रूप है। उसीके लिए अग्नि चयन द्वारा महावेदीका चयन किया जाता है। शरीर या पार्थिव भूतोंसे निर्मित देहका निर्माण ही पंचचितिक अग्नि चयन है। इस महावेदीमें प्राणाग्निकी प्रतिष्ठा यही प्रजापतिका विश्वमें श्रेष्ठतम कर्म है।

चिरप्रतीक्षित पुस्तक] [छप गई

गीता— पुरुषार्थबोधिनी (हिन्दी)

चिरप्रतीक्षित पुस्तक 'पुरुषार्थबोधिनी' छपकर तैय्यार हो गई है। इस पुस्तकके लिए कई पाठकोंके पत्र प्राप्त हुए इसलिए शीघ्र छापनी पडी। आप भी शीघ्रसे शीघ्र आर्डर दीजिए। मूल्य डाक व्यय सहित १५) रु.

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल, पो. 'स्वाध्याय मण्डल, पारडी', पारडी (जि. सूरत)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आर्यसमाजमें सस्वर वेदपाठकी व्यवस्था हो

(लेखक— श्री वीरसेन वेदश्रमी, वेद-सदन, महारानी रोड, इन्दौर नगर)

स्वर सहित वेदमंत्रोंके पाठमें सदा तात्पर्य प्रमुख रूपसे यही रहता है कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरोंके सहित मन्त्रका उच्चारण मन्त्रमें लगे हुए चिह्नोंके अनुसार कण्ठ स्वरसे करना। इस प्रकार उच्चारण करनेसे बहुत ही उत्तम लाभ होता है। अपने शरीर पर और विश्व पर भी किस प्रकार प्रभाव पडता है वह स्वर शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। इसके अतिरिक्त यदि नियत चिह्नोंके अनुसार मन्त्रोंका उच्चारण न किया जावे तो स्वरके द्वारा जो महान् लाभ स्वयंको होना चाहिये और विश्व पर होना चाहिये, वह नहीं होगा।

अपने स्वाभाविक उच्चारणमें, अपने बिना कुछ जाने हुए भी उदात्तादि स्वरोंका उच्चारण होता रहता है। अतः उदात्तादि नियमोंके जाने बिना भी जो मन्त्रोंका पाठ करते हैं उसमें भी स्वर तो होते ही हैं। परन्तु उसको स्वर पाठ नहीं कहा जा सकता। अपितु परमात्माने सृष्टि यज्ञके प्रारम्भमें वेद मन्त्रोंका जो स्वर ऋषियोंके ज्ञान मध्य प्रकट किया, उसी स्वरमें तथा उन ऋषियों द्वारा सृष्टि प्रारम्भकालसे अद्यावधि गुरुशिष्य परम्परा द्वारा वेदमन्त्रोंके उच्चारणकी जो विद्या एवं प्रकार सुरक्षित है उसीके अनुसार वेद मन्त्रोंका उच्चारण करना ही सस्वर वेदपाठ कहा जाता है या माना जाता है। उसी पाठकी शिक्षा रक्षा एवं प्रचलनके लिये जो ग्रन्थ ऋषियोंने निर्माण किये, वे शिक्षा ग्रन्थ कहलाते हैं। येही शिक्षा ग्रन्थ वेदके षडंगोंमें प्रथम हैं।

चारों वेदोंका सस्वर पाठ अपने-अपने वेदकी रीतिसे होता है और वह जिस प्रणाली हो रहा है अर्थात् काशी, पूना आदि स्थानोंमें प्रचलित है उसे महर्षि स्वामी दयानन्दजी सरस्वतीने भी मान्य किया है और उसीको ग्रहण करनेके लिये भी कहा है। अतः परम्परागत वेदमन्त्र पाठकी प्रणाली ग्राह्य है। उस प्रचलित पाठमें यदि कोई दोष हो तो उसका ज्ञान शिक्षा ग्रन्थोंके अध्ययन और स्वर पाठके अभ्याससे ही जाना जा सकता है। अन्य प्रकारसे नहीं। इस प्रकार चारों वेदोंके मन्त्रोंका ४ प्रकारका सस्वर पाठ हुआ। परन्तु यदि कोई इस बातको न जानकर या न मानकर अन्य प्रकारसे ही अपने मनमाने ढंगसे मन्त्रोंका उच्चारण करे तो वह उचित नहीं होगा। शिक्षा ग्रन्थोंने वेदोंके उच्चारणके बारेमें जो नियम बनाये हैं, उन्हें मान्य करना होगा। अन्यथा सभी व्यक्ति अपने अपने पाठको ही उचित समझेंगे और उसीके प्रचलनका भी आग्रह करेंगे।

आर्य समाजने वेदोंका बहुत प्रचार किया और घर-घर वेद मन्त्रोंका प्रचलन किया। यह तो बहुत ही उत्तम कार्य हुआ। जिन लोगोंको संस्कृत देवनागरीकी वर्णमालाका भी बोध नहीं था, उनको भी वेद कठस्थ करा दिये और वे सन्ध्या हवन भी करने लगे। यह एक अद्भुत एवं आश्चर्यमय कार्य वेदमन्त्रोंके प्रचलन एवं प्रचारके लिये कर दिया। जहां भारतके किसी-किसी नगरमें ही कोई वेदमन्त्रोंका उच्चारण करनेवाला था, आर्य समाजके प्रचार एवं प्रयत्नसे घर-घर वहां वेदमन्त्रोंकी ध्वनि गुंजायमान होने लगी।

अब आवश्यकता इस बातकी है कि आर्य समाज वेदोंके शुद्ध एवं सस्वर मन्त्र पाठके शिक्षण और प्रचारकी भी समुचित व्यवस्था करे। हम सब वेदोंको परमात्माका परम पवित्र ज्ञान मानते हैं और यह भी मानते हैं कि वह ज्ञान शब्द सहित ही दिया गया था। तथा शब्द और अर्थका भी सम्बन्ध नित्य है। अतः शब्दोंके यथार्थ उच्चारणसे उसका यथार्थ अर्थ भी समझा जा सकता है और यदि उसको थोडा भी अशुद्ध उच्चारित किया जावे तो अर्थका अनर्थ भी हो सकता है। इसी प्रकार शब्दोंको उदात्तादि स्वरोंके साथ बोलनेसे भी अर्थोंका प्रकाश या ज्ञान होता है। एक ही शब्द स्वर भेदसे अन्य अर्थको प्रकट करने लगता है। अतः वेद मन्त्रोंको वर्ण और स्वर दोनों ही रीतिसे शुद्ध एवं सस्वर पाठ करना चाहिये।

शब्दोंके अशुद्ध उच्चारणसे वेदमन्त्रोंके अर्थोंमें कितना परिवर्तन हो जाता है इसको निम्न उदाहरणोंसे समझ सकता है—

(१) यद्भद्रम्= (यत्+भद्रम्) जो कल्याणकारक है [उसे हमें प्राप्त कराइये] यह अर्थ है। परन्तु जब हम=यद्-भद्रम्= (यत्+अभद्रम्) यह उच्चारण करते हैं तो अर्थ हो जाता है कि जो अभद्र, अकल्याणकारक, अशुभ, बुरा है वह हमें प्राप्त कराइये।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(२) विधेम= विशेष भक्ति करें– यह अर्थ महर्षि दयानन्दजीने किया है। परन्तु जब हम इसके स्थानपर= वधेम = यह उच्चारण करते है तो उसका अर्थ वध करें, मारें, काटें, यह हो जाता है।

(३) भुवः = दुःखनाशक अर्थ है। परन्तु प्रायः लोग = भवः = (भूर्भवः स्वः) कहते हैं। भवः का अर्थ उत्पन्न होनेवाला होता है। परमात्मा तो भुवः है, पुरुष नाशक है और वह तो अजन्मा है अतः उसे भवः नहीं कह सकते है।

(४) सुहुतं = अच्छीप्रकारसे आहुति दिया गया हुआ वह अर्थ होता है। परन्तु 'यदस्य कर्मणो०' मन्त्र बोलते समय लोग = सुहतं = बोल देते हैं, जिसका अर्थ हुआ अच्छी प्रकारसे मारा या नष्ट भ्रष्ट किया गया। इत्यादि प्रकारसे अनेक शब्दोंका अशुद्ध उच्चारण प्रायः लोग करते ही हैं।

मन्त्रोंमें स्वर दोषसे अर्थभेद कितना हो जाता है इसको कतिपय निम्न उदाहरणोंसे जान सकते हैं—

(१) धीमहि = धारण करें। परन्तु जब = धीमहि = इस प्रकार स्वर हो जाता है तो दो पद = धी। महि। हो जाते हैं और अर्थ हो जाता है धी = अर्थात् बुद्धि जो कि महि = अर्थात् प्रशंसनीय है।

(२) मा हिꣳसीः = मतमारो, मत नष्ट करो, यह अर्थ हुआ क्योंकि निषेधार्थमें = मा = शब्द उदात्त है। यदि = मा॑ हिꣳसीः = ऐसा प्रयोग करें तो अर्थ हो जायगा– मुझे मारो। क्योंकि अपने अर्थमें = मा = अनुदात्त होता है।

(३) यस्य॒ क्षया॑य॒ जिन्व॑थ = महर्षि दयानन्द इस मन्त्रका अर्थ पतिके लिये स्त्री निमित्त करते हुए लिखते हैं कि वह स्त्री जिस अपने पतिके निवासके लिये है उसे तृप्त करे। आद्युदात्त क्षय॒ शब्द निवास अर्थमें होता है। अतः यहां क्षयाय शब्दका निवासके लिये अर्थ हुआ। अब यदि क्षयाय शब्दको मध्योदात्त = क्षया॑य = इस प्रकार प्रयुक्त करें तो यहां विनाशके लिये अर्थ हो जाता है अर्थात् वह स्त्री पति विनाशके लिये तृप्त करे। क्योंकि अन्तोदात्त क्षय शब्द नाश अर्थमें होता है।

(४) भ्रातृ॑व्यस्य व॒धाय॑ = स्वरकी दृष्टिसे यहां भ्रातृव्य शब्दका अर्थ शत्रु है अर्थात् शत्रुके वधके लिये। क्योंकि आद्युदात्त भ्रातृव्य शब्द शत्रुवाची है। परन्तु यदि इसको = भ्रा॒तृ॒व्यस्य व॒धाय॑ = इस प्रकार स्वरके साथ प्रयुक्त करे तो अर्थ हो जाता है, भतीजेके वधके लिये।

इत्यादि प्रकारसे अनेक दोष स्वरके विपरीत या अशुद्ध बोलनेसे अर्थभेदके कारण बन जाते हैं। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि मनमें जो भाव हैं उसीके कारण अर्थका लाभ होना चाहिये, वाणी दोषसे अर्थमें दोष नहीं हो सकेगा। ऐसा समझना नितान्त अशुद्ध है तथा अज्ञानता भी है।

उच्चारणमें वर्ण और स्वरोंके दोषोंके अतिरिक्त छन्द दोष भी प्रचलित हो गये हैं। उदाहरणार्थ गायत्री मन्त्र– 'तत्सवितुः' से 'प्रचोदयात्' तक निचृत् गायत्री छन्दमें है। २३ अक्षरका निचृत् गायत्री छन्द होता है। परमात्माने इस मन्त्रकी रचना निचृत् गायत्री छन्दमें की है तो हमें भी उसकी रक्षा उसी छन्दमें करनी चाहिये। परन्तु प्रायः लोग 'वरेण्यं' पदका उच्चारण 'वरेणियं' इस प्रकार अक्षर युक्त, तीन, अक्षरोंके स्थान पर करते हैं। इससे एक अक्षर बढ जाता है और २३के स्थान पर २४ अक्षर हो जाते हैं। परिणामतः छन्द नियमसे वह मन्त्र निचृत् गायत्री न रहकर गायत्री छन्दमें हो जाता है। परमात्माके रचे छन्दोंमें यदि हम अपना परिवर्तन मिश्रित कर देते हैं तब वेदकी रचना परमात्माने की ऐसा कहना कठिन होगा। फिर परमात्माके द्वारा रचे वेदमन्त्र और आपके द्वारा संशोधित वेदमन्त्र ये दो भेद हो जायेंगे। हम सब अपनेको अल्पज्ञ अवश्य मानते हैं और परमात्माको सर्वज्ञ। ऐसी स्थितिमें आपके परिवर्तन अग्राह्य हैं, हेय कोटिमें हैं। परमात्माके द्वारा रचे वेदमन्त्रोंमें किंचित् भी परिवर्तन महादोष पूर्ण तथा अविद्यायुक्त ही माना जायेगा।

इसके अतिरिक्त पुस्तकोंमें प्रेसकी भूलसे तथा प्रकाशकोंकी असमर्थतासे मन्त्रोंमें अनेक स्थानों पर त्रुटियां होती हैं। सामान्य व्यक्ति तो छपे हुएको शुद्ध मानकर उसके अनुसार ही मन्त्रोंका उच्चारण करता है और वैसा ही कण्ठस्थ कर लेता है। इस कारण भी अनेक अशुद्धियां सामान्य जनोंमें प्रचलित हो गईं। अतः आर्य समाजके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह वेद मन्त्रोंकी शुद्धताकी रक्षाके लिये उनके शुद्ध एवं सस्वर पाठकी भी व्यवस्था करे। यदि यह कार्य नहीं किया गया तो कालान्तरमें वेदोंके अशुद्ध उच्चारणका अपयश भी आर्य समाजको प्राप्त होगा जिसका आभास अनेक घटनाओंसे प्रकट हो चुका है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्द्र देवताका परिचय

वैदिक विश्वराज्यके संरक्षक मन्त्रीका परिचय

(लेखक— पं. श्री. दा. सातवलेकर)

१ इन्द्रकी विद्वत्ता

'इन्द्र' देवोंका राजा है, देवोंमें मुख्य है, देवोंका अध्यक्ष है और 'विष्णु' उपेन्द्र है, उपाध्यक्ष है। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष इस अर्थके 'इन्द्र' और 'उपेन्द्र' ये दो पद हैं। ये पद ही ये राज्यव्यवस्थाके दो अधिकारी हैं यह बात स्पष्ट कर रहे हैं।

इन्द्र युद्धमंत्री या संरक्षणमंत्री है। प्रथम हम यह देखेंगे कि युद्धमंत्रीकी विद्वत्ता कितनी होती थी। युद्ध मंत्रीके विषयमें वैदिक कल्पना क्या थी। इन्द्र विद्यामें निपुण था इस विषयमें नीचे दिये मंत्र देखने योग्य हैं—

१ विद्वान् वज्रिन् दस्यवे हेतिं अस्य।
आर्यं सहो वर्धय द्युम्नं इन्द्र ॥ ऋ. १।१०३।३

२ स्थिरं रथं सुखं इन्द्र अधि तिष्ठन्।
प्रजानन् विद्वान् उप याहि सोमम् ॥
ऋ. ३।३५।४

३ तस्य आगत्या सुमना ऋष्व पाहि।
प्रजानन् विद्वान् पथ्या अनु स्वाः ॥
ऋ. ३।३५।८

४ विद्वान् चिकित्वान् हर्यश्व वर्धस।
इन्द्र विश्वा अभि श्रियः ॥ ऋ. ३।४४।२

५ सोमं पिब वृत्रहा शूर विद्वान् ॥ ऋ. ३।४७।२

६ इन्द्रो विद्वान् अपारयत् ॥ ऋ. ४।३०।१७

७ उरुं नो लोकं अनुनेषि विद्वान्।
स्वर्वज्ज्योतिः अभयं स्वस्ति ॥ ऋ. ६।४७।८

८ स विद्वां अंगिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदपः।
ऋ. ८।६३।३

९ इन्द्रो विद्वां अनुहित्वा चचक्ष ॥ ऋ. १०।३२।६

१० इन्द्राग्नी···विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥
ऋ. ५।८६।९

इन मंत्रोंमें बार बार इन्द्रको 'विद्वान्' कहा है। इनका अर्थ अब देखिये- (१) हे वज्रधारी इन्द्र! (विद्वान्) तू विद्वान् है, तू सब जानता है, (दस्यवे हेतिं अस्य) शत्रुपर शस्त्र फेंक और (द्युम्नं आर्यं सहो वर्धय) तेजस्वी आर्य बल बढा। (२) हे इन्द्र! (स्थिरं सुखं रथं अधि तिष्ठन्) स्थिर और सुखदायक रथपर चढकर (प्रजानन् विद्वान्) तू सब जाननेवाला विद्वान् सोमके समीप जा। (३) (सुमना प्रजानन् विद्वान्) उत्तम मनसे युक्त सब जाननेवाला विद्वान् (स्वाः पथ्या अनु आगत्या) अपने मार्गसे अनुकूलतापूर्वक यहां आ और (पश्य) सब देख। (४) हे (विद्वान् चिकित्वान् हर्यश्व) विद्वान् ज्ञानी तू हरिद्वर्णके घोडे जोतकर (विश्वाः श्रियः अभि वर्धसे) सब संपत्तियोंको बढाता है। (५) हे शूर विद्वान् इन्द्र! (वृत्रहा) तू वृत्रको मारकर (सोमं पिब) सोमको पी। (६) विद्वान् इन्द्र दुःखोंसे पार करता है। (७) तू विद्वान् है, (नः उरुं लोकं अनुनेषि) हमें विशाल लोकको पहुंचा, हमें (स्वः ज्योतिः अभयं स्वस्ति) आत्मज्योतिको निर्भय करके सुखपूर्वक पहुंचा। (८) (स विद्वान्) उस विद्वान् इन्द्रने अंगिरसोंसे गौवें प्राप्त कीं। (९) विद्वान् इन्द्रने (स्वा अनु चचक्ष) तुझे अनुकूल दृष्टिसे देखा। (१०) इन्द्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

और अग्नि ये दोनों विद्वान् हैं और प्रशंसनीय हैं।

इन मंत्रोंमें इन्द्रको 'विद्वान्, प्रजानन्, चिकित्वान्' कहा है इन पदोंसे उसकी विद्वत्ता प्रकट होती है। इन्द्र साधारण विद्वान नहीं है, परंतु वह विशेष विद्वान् है, देखिये—

एवा नूनं उपस्तुहि वैयश्व दशमं नवं।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ ऋ. ८।२४।२०

हे वैयश्व। (एवा नूनं) इस प्रकार (दशमं नवं सुविद्वांसं) दसवां नया उत्तम विद्वान् (चरणीनां चर्कृत्यं) कर्म कुशलोंमें अत्यंत कुशल है उस इन्द्रकी (उपस्तुहि) स्तुति करो।

यहां इन्द्रको 'सु-विद्वान्' अर्थात् उत्तम विद्वान् कहा गया है। तथा और देखिये—

१ भीमो विवेष आयुधेभिः एषां अपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान्। ऋ. ७।२१।४
२ विश्वानि शक्रो नर्याणि विद्वान् अपो रिरेच सखिभिः निकामैः। ऋ. ४।१६।६
३ विश्वस्य विद्वान् इह पाहि। ऋ. १०।१६०।२
४ विश्वानि विदुषे भर। ऋ. ६।४२।१

(१) (भीमः) भयंकर वीर इन्द्र (एषां विश्वा नर्याणि अपांसि) इनके सब सार्वजनिक हितके कार्योंको (विद्वान्) जाननेवाला (आयुधेभिः विवेष) शस्त्रास्त्रोंसे शत्रुसेनामें घुसता है। (२) (शक्रः) सामर्थ्यवान् इन्द्रने (विश्वानि नर्याणि विद्वान्) सब मानवोंके हितके कार्य जाननेवालेने (निकामैः सखिभिः अपः रिरेच) इच्छा करनेवाले मित्रोंके साथ जल उत्पन्न किया। (३) (विश्वस्य विद्वान्) सब कार्यको जाननेवाले इन्द्र! (इह पाहि) यहां हमारा रक्षण कर। (४) (विश्वानि विदुषे) सब कर्तव्योंके विद्वान्के लिये (भर) दे।

इन मंत्रोंमें इन्द्रको सब कर्मोंके करनेकी पद्धतिको यथार्थतया जाननेवाला कहा है। यह उसकी विद्वत्ता और निपुणताका द्योतक है।

इन्द्र विशेष विद्वान् है

इन्द्रको 'वि-प्र' भी कहा है। 'विप्र' का अर्थ 'विशेष प्राज्ञ' है, ब्राह्मणके समान विशेष ज्ञानी इन्द्र है, देखिये—

१ अहिर्बुध्न्य अभि विप्रं अर्चत। ऋ० १।५१।१
२ तत् इत् नु ते करणं दस्म विप्र।
अहिं यद् हन् ओजो अत्रामिमीथाः ऋ. ५।३१।७
३ अंगिरस्वान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व॥ ऋ. ६।३५।५
४ सनिता विप्रो अर्वद्भिः हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः॥ ऋ. ८।२।३६
५ धिया विप्रो अजायत। ऋ. ८।६।२८
६ इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत्।
धर्मकृते विपश्चिते पनस्यवे। ऋ. ८।९८।१
७ ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां वसुनः च दावने॥ ऋ. १०।५०।७
८ प्र वः इन्द्राय वृत्रहन्तमाय विप्राय गाथं गायत॥ साम. १०७०.

(१) महान् और विशेष ज्ञानी इन्द्रकी अर्चना करो। (२) हे (दस्म विप्र) दर्शनीय ज्ञानी इन्द्र! (तत् इत् नु ते करणं) वह निःसंदेह तेरा ही कार्य है कि (यत् अहिं हन्) जो अहिको मारा (ओजः अत्र अमिमीथाः) और अपना बल प्रकट किया। (३) हे (विप्र) ज्ञानी इन्द्र! (अंगिरसोंको ब्रह्मणा जिन्व) तू अंगिरसोंको अन्न देकर सन्तुष्ट कर। (४) तू (सनिता) दाता है (विप्रः) ज्ञानी है, (अर्वद्भिः) घोडोंसे जानेवाला (वृत्र हन्ता) वृत्रको मारनेवाला और (नृभिः शूरः) तू शूरोंके साथ बहुत शूर भी है। (५) तू (धिया) बुद्धिसे (विप्रः अजायत) विशेष ज्ञानी हुआ है। (६) (विप्राय बृहते इन्द्राय) ज्ञानी बडे इन्द्रके लिये (बृहत् साम गायत) बडा साम गायन करो। इन्द्र धर्म करनेवाला, ज्ञानी और कर्मकर्ता है। (७) हे (विप्र) ज्ञानी इन्द्र! (ये ते सुते ब्रह्मकृतः) जो तेरे सोमयागमें ज्ञानके किये स्तोत्र हैं जो (वसूनां वसुनः दावने) धनोंके धनमें गाये जाते हैं। (८) (वृत्रहन्तमाय विप्राय इन्द्राय) वृत्रको मारनेवाले ज्ञानी इन्द्रके लिये (गाथं गायत) साम गान गाओ।

इन मन्त्रोंमें इन्द्रको 'विप्र, विपश्चित्' अर्थात् बडा विद्वान् कहा है। 'विप्रतम' अत्यंत ज्ञानी ऐसा भी वेदमें इन्द्रको कहा है, देखो—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नि षु सीद गणपते गणेषु
त्वां आहुर्विप्रतमं कवीनाम्।
न ऋते त्वत् क्रियते किंचनारे
महामर्कं मघवन् चित्रं अर्चं ॥ ऋ. १०।११२।९

हे (गणपते मघवन् इन्द्र) गणोंके स्वामी धनवान् इन्द्र। तू (गणेषु निषुसीद) गणोंमें बैठ। (त्वां कवीनां विप्रतमं आहुः) तुझको ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी कहा जाता है। (त्वत् ऋते) तेरे विना (किंचन कर्म न क्रियते) कुछ भी कार्य नहीं किया जाता (आरे) समीपके स्थानमें (महां अर्कं चित्रं अर्च) बडे पूजनीय विशेष देवकी पूजा कर। इस मंत्रमें इन्द्रको 'गणपति, विप्रतम कवीनां श्रेष्ठं, महां अर्कं चित्रं' कहा है। ये विशेषण इसकी विद्वत्ताका वर्णन करते हैं।

अगच्छद् उ विप्रतमः सखीयन्। ऋ. ३।३१।७

(विप्रतमः) ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ज्ञानी इन्द्र मित्र बनकर गया। यहां भी 'विप्रतम' पद अधिक श्रेष्ठ विद्वान्के अर्थमें प्रयुक्त है।

विपश्चित् इन्द्र

'विपश्चित्' पद बडे विद्वान्का वाचक पद है। वह इन्द्रके लिये प्रयुक्त हुआ है, देखिये—

इन्द्रं पृच्छ विपश्चितम्। ऋ. १।४।४
स्तुहि श्रुतं विपश्चितम्। ऋ. ८।१३।१०

विद्वान इन्द्रको पूछो। ज्ञानी बहुश्रुत इन्द्रकी स्तुति कर। इसी तरह इन्द्रको 'प्रविद्वान्' भी कहा है। इसका मंत्र यह है—

शविष्ठ प्रविद्वान् यज्ञं उपयाहि। अथर्व. ७।९७।१

हे बलवान् तथा विशेष विद्वान् इन्द्र! यज्ञके पास पहुंचो। 'विजानन्' पद विशेष ज्ञानीके लिये प्रयुक्त होता है यह इन्द्रके लिये अगले मंत्रमें प्रयुक्त हुआ है—

ज्योतिः वृणीते तमसो विजानन्
आरे स्याम दुरितादभीके ॥ ऋ. ३।३९।७

(विजानन्) ज्ञानी इन्द्र (तमसः ज्योतिः वृणीते) अन्धकारको दूर करके ज्योतिको प्राप्त होता है। अब हम (दुरितात्) पापसे दूर होकर रहेंगे। अब 'विचेताः' पदका प्रयोग देखिये—

ततुरिः वीरो नर्यो विचेताः। ऋ. ६।२४।२

(ततुरिः) खरासे कार्य करनेवाला (नर्यः) सार्वजनिक हित करनेवाला वीर इन्द्र (वि-चेताः) विशेष ज्ञानी है।

कवियोंमें श्रेष्ठ कवि

अनु त्वा अहिघ्ने अध देव देवा।
मदन् विश्वे कवितमं कवीनाम् ॥ ऋ. ६।१८।१४

हे इन्द्र देव! तू (कवीनां कवितमं) ज्ञानियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञानी है इसलिये (विश्वे देवाः) सब देव (अहिघ्ने त्वा) अहिको मारनेवाले तेरी (अनु मदन्) स्तुति करते हैं। कवियोंमें श्रेष्ठ कवि इन्द्र है।

इन्द्र सूरि है

बडा विद्वान्, जो बडा टीकाकार होता है, उसको 'सूरि' कहते हैं। इन्द्रको भी 'सूरि' कहा है देखो—

सूरिः इन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता।
ऋ. ६।२३।१०

(इन्द्रः सूरिः) इन्द्र बडा ज्ञानी है और (विश्ववारस्य रायः दाता) सब प्रकारसे स्वीकारके योग्य धनका दाता है।

विश्ववेदा इन्द्र

इन्द्रः सुत्रामा स्ववां अवोभिः
सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु
सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥ ऋ. ६।४७।१२

इन्द्र (सु-त्रामा) उत्तम संरक्षक है, (स्ववान्) स्वसामर्थ्यसे युक्त है, (सु-मृळीकः) उत्तम सुख देनेवाला (अवोभिः) संरक्षणके साधनोंसे युक्त है, (विश्ववेदाः) सब प्रकारोंके ज्ञानोंसे युक्त उत्तम ज्ञानी है (बाधतां द्वेषः) शत्रुओंको दूर करे, (अभयं कृणोतु) अभय करे (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम वीर्यके हम स्वामी बनें।

इस मंत्रमें इन्द्रको 'विश्व-वेदाः' अर्थात् सर्वज्ञ, सब जाननेवाला कहा है।

मनस्वी इन्द्र

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्
देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेताम्
नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥ ऋ. २।१२।१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(मनस्वान् प्रथमो देवः) बुद्धिमान् पहिले इन्द्र देवने (देवान् क्रतुना पर्यभूषत्) सब देवोंको अपने क्रतुसे सुभूषित किया। (यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेतां) जिसके बलसे द्यावा पृथिवी कांपने लगती हैं। हे (जनासः) लोगो! (नृम्णस्य महा) जो शक्तिके महत्वसे युक्त है (सः इन्द्र) वही इन्द्र है।

यहां 'मनस्वान् इन्द्र' का वर्णन है। मननशील इन्द्र है यह इसका भाव है।

बुद्धिमान् इन्द्र

इन्द्र बुद्धिमान् है। इस कारण इन्द्रको 'मेधिर' कहा है—

इन्द्राय विश्वं इन्दुं मेधिराय। ऋ. १।६१।४

'(मेधिराय इन्द्राय) बुद्धिमान इन्द्रके लिये यह स्तुति है।'

सरत् पुरंधि न आगहि
विश्वता धी न ऊतये॥ ऋ. ८।३४।६

हे (पुरंधि) बडे बुद्धिमान् इन्द्र! (नः आगहि) तू हमारे समीप आ और (विश्वतो धी) सब ओर अपनी बुद्धि चलानेवाला इन्द्र (नः ऊतये) हमारी सुरक्षाके लिये हमारे समीप आवे।

जाग्रत बुद्धिमान् इन्द्र

इन्द्र हमेशा जाग्रत रहता है। इसको वेदमें 'जागृवि' कहते हैं—

भक्षं सोमस्य जागृविः॥ ऋ. ८।२२।२३

हे जाग्रत रहनेवाले इन्द्र! सोमका भक्षण कर। तथा—

शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः॥ ऋ. १०।१३४।६

हे (मन्तुमः) ज्ञानी इन्द्र! तू बडी शक्ति धारण करता है।

त्वं हि शश्वतीनां इन्द्र दर्ता पुरां असि।
हन्ता दस्योः मनोवृधः पतिः दिवः॥ ऋ. ८।९०।६

हे इन्द्र! (त्वं हि) तू (शश्वतीनां पुरां दर्ता असि) शाश्वत पुरियोंको तोडनेवाला है, तू (दिवः पतिः) द्युलोकका स्वामी है (दस्योः हन्ता) दुष्टोंका वध तू करता है। (मनोः वृधः) मनन शक्तिको बढानेवाला तू है।

अजातशत्रु इन्द्र

अजातशत्रुः अस्तृतः॥ ऋ. ८।९३।१५

'इन्द्रका कोई शत्रु नहीं तथा उसका पराभव भी नहीं होता।

द्रोहसे भाषण न करनेवाला

नक्षद्दामं ततुरिं पर्वतेष्ठां अद्रोघवाचं मतिभिः
शविष्ठम्। ऋ. ६।२२।२

'(नक्षत्-दामं) शत्रुका नाश करनेवाले, (ततुरिं) त्वरासे कार्य करनेवाले (पर्वते-स्थां) पर्वतपर रहनेवाले (अ-द्रोघ-वाचं) द्रोह रहित भाषण करनेवाले (शविष्ठं) बलवान् इन्द्रकी (मतिभिः) बुद्धिपूर्वक स्तुति की।'

इन्द्र इतना शक्तिमान है तो भी वह द्रोहकी भाषा नहीं बोलता।

प्रवचनकर्ता इन्द्र

इन्द्र उत्तम प्रवचन करनेवाला है इस विषयमें मन्त्र देखिये—

स वृत्रहा इन्द्रः चर्षणीधृत्
तं सुष्टुत्या हव्यं हुवेम।
स प्राविता मघवा नो अधिवक्ता
स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता॥ ऋ. ८।९६।२०

(सः वृत्र-हा) वह वृत्रको मारनेवाला इन्द्र है, (चर्षणी-धृत्) लोगोंको धारण करनेवाला है, जो उसकी स्तुति करके उसके लिये हवन करते हैं। वह इन्द्र (प्रावितां) हमारा रक्षक है और वह (अधिवक्ता) उपदेश करनेवाला है तथा यशस्वी अन्न देनेवाला है।

यहां 'अधिवक्ता' पदका प्रयोग है। इस प्रकार इन्द्र विद्वान्, विचारी, मननशील, प्रवचन कर्ता है यह बात वेद मंत्रोंने बता दी है। इन्द्र युद्धमंत्री, तथा संरक्षणमंत्री है। वह विद्वान्, उत्तम वक्ता, सब विषयोंको समझनेवाला होना चाहिये, नहीं तो उस स्थान पर कोई अज्ञानी रहा, तो वह संरक्षणके कार्यको अच्छी तरह कर नहीं सकेगा। इस प्रकार संरक्षण मंत्री विद्वान् तथा उत्तम वक्ता होना चाहिये यह वेदने यहां स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है।

इन्द्रके शरीरावयव, शस्त्रास्त्र और पोशाक

उग्रबाहु इन्द्र

इन्द्रके बाहु बडे उग्र हैं अर्थात् बडे शक्तिशाली और हृष्ट पुष्ट हैं, देखिये—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उग्रबाहुः म्रक्षकृत्वः पुरंदरो
यदि मे शृणवद् हवम् ॥ ऋ. ८।६१।१०
य उग्रीणां उग्रबाहु ययुः
यो दानवानां बलं रुरोज ॥ अथर्व ४।२४।२

जो बलवान् बाहूवाला, शत्रुका वध करनेवाला, शत्रुके नगर तोडनेवाला इन्द्र यदि मेरी प्रार्थना सुनेगा।

जो बलवान् बाहुवाला शत्रुओंपर हमला करता है और दानवोंका बल तोडता है।

इन मंत्रोंमें इन्द्रके लिये 'उग्र-बाहु' कहा है। इसमें इन्द्रकी वीरताकी प्रशंसा है, उसका शरीर बडा हृष्टपुष्ट है यह इससे सिद्ध होता है। क्योंकि किसी वीरके बाहु ही बलिष्ठ हों और बाकी शरीर निर्बल हो ऐसा नहीं होता, जिसके बाहु बलवान हों उसका सब शरीर भी बलवान् होता है इस कारण इन्द्रका सब शरीर हृष्टपुष्ट था यही इससे सिद्ध हुआ है।

इन्द्रकी दो शिखाएं

जो दो शिखाएं रखता है उसको 'द्वि-बर्हा' कहते हैं। इन्द्रको वेदमें द्विबर्हा कहा है देखिये—

महां इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा
उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ॥ ऋ. ६।१९।१
यस्य द्विबर्हसो बृहत्
सहो दाधार रोदसी ॥ ऋ. ८।१५।२

(महान् इन्द्र) बडा है (नृवदा चर्षणिप्राः) मानवोंकी इच्छा पूर्ण करनेवाला, मानवोंके साथ रहनेवाला (द्विबर्हा) दो शिखाएं रखनेवाला है। (द्विबर्हसः यस्य महत् सहः) दो शिखाएं रखनेवाले इन्द्रका बडा बल द्यावापृथिवीको धारण करता है।

'द्विबर्हाः' का अर्थ भाष्यकारोंने द्यावापृथिवीके दोनों स्थानोंमें रहनेवाला ऐसा भी किया है। और दो शिखावाला ऐसा भी इन पदोंका अर्थ है।

वज्रबाहु इन्द्र

इन्द्रके बाहु वज्रके समान कठोर और बलशाली थे ऐसे वर्णन वेदमें बहुत हैं—

इन्द्रो यातो अवसितस्य राजा
शमस्य च शृंगिणो वज्रबाहुः। ऋ. १।३२।१५
यो रौहिणं अस्फुरद् वज्रबाहुः। ऋ. २।१२।१२
इन्द्रो अस्मां अरदद् वज्रबाहुः। ऋ. ३।३३।९
एव इद् इन्द्रं वज्रबाहुं
वसिष्ठासो अभ्यर्चन्ति अर्कैः। ऋ. ७।२३।६

वज्रके समान बाहूवाला इन्द्र स्थिर और चल, तथा शान्त और सींगवालोंका राजा है। वज्रबाहू इन्द्रने रौहिणेयको मारा। वज्रबाहु इन्द्रने हमको– नदियोंको–खोदकर बनाया है। वज्र समान बाहुवाले इन्द्रकी स्तोत्रोंसे वसिष्ठ अर्चना करते हैं।

इस तरह इन्द्रके वज्रके समान सामर्थ्यवान् बाहुओंका वर्णन वेदमें है।

मूंछें हिलानेवाला इन्द्र

'श्मश्रु' दाढी और मूछियोंका नाम है। ये दाढी और मूंछ इन्द्र हिलाता है ऐसा वेदमंत्रने कहा है—

प्र श्मश्रु दोधुवत् ऊर्ध्वथा भूत्
वि सेनाभिः दयमानो वि राधसा ॥ ऋ. १०।२३।१

वह इन्द्र (ऊर्ध्वथा श्मश्रु प्र दोधुवत्) ऊर्ध्व दिशामें अपनी मूछियां हिलाता है। वह (सेनाभिः विदयमानः) अपनी सेनासे शत्रुका नाश करता है तथा (राधसा वि) धनका दान करता है।

'श्मश्रु ऊर्ध्वथा दोधुवत्' मूछियां ऊपर हिलाता है। 'श्मश्रु' का अर्थ दाढी मूछियां है। बोलनेके समय उसकी दाढी और मूछियां हिलती रहती है। यह इसका तात्पर्य है।

इन्द्रका सुडौल शरीर

इन्द्रका शरीर बडा सुडौल था। इसका वर्णन वेदमें ऐसा है—

ऋतस्य दृळहा धरुणानि सन्ति
पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि।
ऋतेन दीर्घं इषणन्त पृक्ष
ऋतेन गावः ऋत आ विवेशुः ॥ ऋ. ४।२३।९

(ऋतस्य) सत्य स्वरूप इन्द्रके (दृळहा धरुणानि सन्ति) सुदृढ धारण शक्तिसे युक्त शरीर है। (वपुषे पुरूणि चन्द्रा वपूंषि) उनके शरीरके स्थानपर बहुत आह्लाददायक कान्तिवाले शरीरावयव हैं। (ऋतेन दीर्घं पृक्ष इषणन्त) इन्द्रसे बहुत अन्न भक्त लोग प्राप्त करना चाहते हैं। (ऋतेन गावः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऋत आ विविशुः) इन्द्रके साथकी गौवें इन्द्रके साथ ही रहती हैं।

यहां 'ऋत' पद इन्द्रका वाचक है क्योंकि यह इन्द्र सत्य धर्मा है, अतः वह 'ऋत' ही है। इसका शरीर 'चन्द्रा, दळहा, धरुणानि' है अर्थात् 'सुन्दर, सुदृढ तथा बलवान्' है ऐसा यहां कहा है।

बडे पेटवाला इन्द्र

इन्द्रका पेट बडा था परंतु वह केवल स्थूल ही नहीं था। वह सामर्थ्यवान् था। इस विषयमें कहा है–

तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुः अन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ऋ. ८।१७।८

'(तुवि-ग्रीवः) विशाल गर्दनवाला (वप-उदरः) बडे पेटवाला (सु-बाहुः) उत्तम बाहुवाला इन्द्र (अन्धसः मदे) सोमरसके उत्साहसें (वृत्राणि जिघ्नते) वृत्रोंको मारता है।

इस मंत्रमें (तुवि-ग्रीवः) हृष्टपुष्ट गर्दनवाला इन्द्र है ऐसा कहा है। सिरसे गर्दन मोटी चाहिये जिससे वृद्धावस्थामें सिर हिलता नहीं। (वप-उदरः) पेट पुष्ट चाहिये और (सुबाहुः) बाहु भी पुष्ट और शक्तिमान् चाहिये। इस वर्णनसे इन्द्रका शरीर कैसा था इसका पता लग सकता है।

गौरवर्ण इन्द्र

इस इन्द्रका गौरवर्ण है इसका वर्णन यह मंत्र करता है–

शुभ्रं नु ते शुष्मं वर्धयन्तः
शुभ्रं वज्रं बाह्वोः दधानाः।
शुभ्रः त्वं इन्द्र वावृधानो अस्मे
दासीः विशः सूर्येण सह्याः ॥ ऋ. २।११।४

हे इन्द्र! (ते शुभ्रं शुष्मं वर्धयन्तः) तेरा शुभ्र अर्थात् निर्दोष बल हम बढाते हैं, (बाह्वोः शुभ्रं वज्रं दधानाः) तेरे बाहुओंमें शुभ्र वज्र धारण कराते हैं। (त्वं शुभ्रः अस्मे वावृधानः) तू गौर वर्ण है हमारा सामर्थ्य बढानेवाला है, (सूर्येण) सूर्यके सामान (दासीः विशः सह्याः) शत्रुकी सेना या प्रजाका पराभव कर। वे हमपर आक्रमण न कर सकें ऐसा कर।

दर्शनीय इन्द्र

इन्द्र बलवान् हृष्टपुष्ट था और सुन्दर भी था। देखिये–

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि ॥
ऋ. १।८२।३

'हे इन्द्र! (वयं) हम सब (सुसंदृशं त्वा) उत्तम दर्शनीय ऐसे तुझे (वन्दिषीमहि) प्रणाम करते हैं।' इसमें इन्द्र सुन्दर है ऐसा कहा है। इन्द्र गोरा है, महाशक्तिमान् है और सुन्दर भी दीखता है।

सुवर्ण सा वर्णवाला इन्द्र

इन्द्रका वर्ण गौर था, पर सुवर्ण जैसा पीत भी था। इसका वर्णन ऐसा वेदमें किया है—

यदीं इन्द्र श्रवाय्यं इषं शविष्ठ दधिषे।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥
ऋ. ५।३८।२

'हे (शविष्ठ हिरण्यवर्ण इन्द्र) बलवान्, सुवर्णके समान वर्णवाले इन्द्र! (श्रवाय्यं इषं दधिषे) सुप्रसिद्ध अन्न तुम्हारे पास है वह (दीर्घ-श्रुत्तमं दुष्टरं पप्रथे) सुप्रसिद्ध और अजिंक्य सा है।'

इसमें सुवर्णसा शरीर इन्द्रका है ऐसा कहा है।

आयुधोंको धारण करनेवाला इन्द्र

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुः समुद्रं धरुणं रयीणाम्। चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारं अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिंदाः। ऋ. १०।४७।२

'(सु-आयुधं) उत्तम प्रकारके आयुध धारण करनेवाले (सु-अवसं) उत्तम रीतिसे रक्षण करनेवाले, (सु-नीथं) उत्तम नीतिसे युक्त (चतुः समुद्रं) चारों समुद्रों तक जिसकी कीर्ति पहुंची है ऐसे (रयीणां धरुणं) धनोंके धारक (चर्कृत्यं) पुरुषार्थके कार्य करनेवाले (भूरिवारं शंस्यं) अनेक वार प्रशंसनीय इन्द्र है। हे इन्द्र! तू हमें विलक्षण बलवर्धक धन दो।

इसमें 'सु-आयुधं' पद है, उत्तम शस्त्र अस्त्र अपने पास रखनेवाला इन्द्र है। संरक्षण मंत्रीको ऐसा ही करना चाहिये तथा—

युद्धे यद् इष्णान आयुधानि ऋघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ ऋ. १।६१।१३

(युद्धे आयुधानि इष्णानः) युद्धमें आयुधोंको शत्रु पर फेंकता है (ऋघायमाणः शत्रून् निरिणाति) शत्रुओंका

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

नाश करनेकी इच्छा धरके शत्रुका नाश करता है। इस तरह आयुधोंका उपयोग करनेवाला वीर इन्द्र है।

धनुर्धारी इन्द्र

इन्द्र धनुष्य भी उत्तम रीतिसे बर्तता है देखिये—

स इषु हस्तैः स निषङ्गिभिः वशी
संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
संसृष्टजित् सोमपा बाहुशर्धी।
उग्रधन्वा प्रतिहिताभिः अस्ता ॥ ऋ. १०।१०३।३

(सः इषुहस्तैः) वह बाण बर्तनेवालोंके साथ रहता है, वह (निषङ्गिभिः) तलवार धारण करनेवालोंके साथ रहता है, (वशी) सबको अपने वशमें करता है, (संस्रष्टा) शत्रुके संघमें जाकर युद्ध करनेवाला है, (गणेन युद्धः सः इन्द्र) गणोंके साथ रहनेवाला वह इन्द्र (संसृष्ट जित्) शत्रुके साथ होनेवाला युद्ध जीतनेवाला, सोम पीनेवाला (बाहुशर्धी) बलवान् बाहुवाला (उग्रधन्वा) उग्र धनुष्यका उपयोग करनेवाला, (प्रतिहिताभिः अस्ता) शत्रुपर फेंकनेवाले बाणोंसे शत्रुको मारनेवाला इन्द्र है।

इसमें 'उग्र धन्वा' इन्द्र है ऐसा वर्णन है। इससे इन्द्रके उत्तम धनुर्धारी होनेकी सिद्धता होती है।

वज्रधारी इन्द्र

इन्द्रका मुख्य शस्त्र 'वज्र' है अतः इन्द्रकी स्तुतिमें उसके वज्रधारी होनेका वर्णन आता है। देखिये—

इन्द्रो वज्री हिरण्ययः। ऋ. १।७।२
महित्वं अस्तु वज्रिणे ॥ ऋ. १।८।५
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्रवोचम्
यानि चकार प्रथमानि वज्री ॥ ऋ. १।३२।१
शविष्ठ वज्रिन् ओजसा पृथिव्या निःशसा
ऋ. १।८०।१

इन्द्र वज्रधारी है, वह सुवर्णके समान कान्तिसे युक्त है। वज्रधारी इन्द्रका महत्व हो। इन्द्रके कार्योंका मैं वर्णन करता हूं जो उस वज्रधारीने किये थे। बलिष्ठ वज्रधारी पृथिवीका शासन करता है।

इस तरह इन्द्र वज्रधारी है और वज्रसे वह विशेष पराक्रम करता है।

कर्तृत्ववान् इन्द्र

इन्द्रको 'चक्री' कहा है। इसका अर्थ यह महा कर्तृत्ववान् है।

एमेनं सृजता सुते मन्दिं इन्द्राय मन्दिने।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ ऋ. १।९।२

(विश्वानि चक्रये) सब विश्व उत्पन्न करनेवाले आनंद बढानेवाले इन्द्रके लिये सोमका आनंददायक सोमरस दे दो। यह वर्णन उसके विशेष कर्तृत्वका वर्णन है। अब इसके पोषाखका वर्णन देखेंगे।

इन्द्रका शिरस्त्राण

आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तु। ऋ. १।१०१।१०

'हे (सुशिप्र) उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाले इन्द्र! तुझे घोडे ले जांय।' यहां 'सुशिप्र' पद आया है। 'शिप्र, सुशिप्र' ये पद उसके उत्तम शिरस्त्राणके वाचक हैं। अब और देखिये—

ऊती अनूती हरिशिप्रः सत्वा। ऋ. ९।२९।६

'हमारा रक्षण करके अथवा न करके सुवर्णके शिरस्त्राणवाला इन्द्र सत्ववान् है।' यहां 'हरिशिप्र' पद सुवर्णसे सुन्दर बनाये शिरस्त्राणका वाचक है। इससे पता चलता है कि जरीवाले शिरस्त्राणको इन्द्र धारण करता है। यह साफा होगा अथवा धातुका बना शिरस्त्राण होगा। यह शिरोभूषण है इसमें संदेह नहीं है।

इन्द्रका चोगा

वसानो अत्कं सुरभिं दृशेकं स्वर्ण नृतविषिरो
बभूथ ॥ ऋ. ६।२९।२

'तू (अत्कं वसानः) चोगा पहनता है (सुरभिं दृशेकं) सुंदर दीखनेके लिये मानवोंमें पूजनीय होता है।

इन्द्रका कवच

वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि। ऋ. १०।१०१।८

'कवच सीकर बहुत तैयार करो।' इस प्रकार वीरोंके कवच सीये जाते थे, वीर उन्हें पहनते थे।

बिभ्रद् द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्ते निर्णिजम्।
ऋ. १।२५।१३

वरुण देव सुवर्णके कामसे युक्त चोगा पहनता है। इस तरह इन्द्र भी पहनता होगा।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ये इनके पोषाख हैं, शस्त्रोंका वर्णन इससे पूर्व किया जा चुका है। इन्द्रके शस्त्र अस्त्र, पोषाख आदिका वर्णन यहां तक हुआ है।

इन्द्रका बल और सामर्थ्य

इन्द्र शूर है, वीर भी है, इस कारण वह बलवान् भी है, क्योंकि बलके बिना शूरवीरताका होना असंभव है। 'वाजी' पद बलवान्के अर्थमें इन्द्रके वर्णनमें आता है देखिये—

१ तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयाम शतक्रतो।
ऋ. १।४।९

२ वाजे वाजिन् शतक्रतो। ऋ. ८।५२।४

३ स्तुहि इन्द्रं व्यश्ववद् अनूर्मिं वाजिनं यमम्।
ऋ. ८।२४।२२

४ वाजी ददातु वाजिनम्। ऋ. ८।९३।३४

(१) हे (शत-क्रतो) सैकडों कर्म करनेवाले इन्द्र! (वाजेषु) युद्धोंमें (त्वा वाजिनं वाजयामः) बल दिखानेवाले तुझे बलवान् करते हैं अर्थात् तेरे बलकी प्रशंसा करते हैं। (२) हे बलवान् इन्द्र! हे सैकडों कर्म करनेवाले! बलके लिये तुझे बुलाते हैं। (३) व्यश्वके समान अपराजित बलवान् सबको स्वाधीन रखनेवाले इन्द्रकी स्तुति कर। (४) (वाजी) बलवान् इन्द्र बलको देवे।

इन मंत्रोंमें बल तथा सामर्थ्यवाचक 'वाज' पद इन्द्रका सामर्थ्य बतानेके लिये यहां आया है।

'वाज' का अर्थ 'युद्ध, बल, सामर्थ्य, शक्ति, धन, अन्न, घी, वाणी, शब्द' आदि होता है। यहां हमने बल अर्थ लिया है।

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन् समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम्॥
ऋ. १।११।१

'(समुद्रव्यचसं इन्द्रं) समुद्रके समान विस्तृत कीर्तिवाले इन्द्रको (विश्वा गिरः अवीवृधन्) सब स्तुतियां बढा रही हैं, वह इन्द्र (रथीनां रथीतमं) रथियोंमें उत्तम रथी (वाजानां सत्पतिं पतिं) बलोंका उत्तम स्वामी है। तथा—

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः
सहस्वान् वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्वा सहौजा
जैत्रमिन्द्र रथमातिष्ठ गोवित्॥ ऋ. १०।१०३।५

(बलविज्ञायः) सामर्थ्यके लिये सुप्रसिद्ध, (स्थविरः) अपने स्थान पर स्थिर रहनेवाला, (प्रवीरः) श्रेष्ठ वीर (सहस्वान् वाजी) बलवान् तथा सामर्थ्यवान् (सहमानः उग्रः) प्रभावशाली तथा उग्रवीर (अभिवीरो अभिसत्वा) सब प्रकारका वीर, सब शक्तियोंसे युक्त (सह-ओजाः) ओजस्वी (गो-वित्) गौओंका पालन करनेवाला इन्द्र है वह अपने विजयी रथपर बैठे।

सबलो अनपच्युतः। ऋ. ८।९३।९

'वह इन्द्र बलसे युक्त है और (अनप-च्युतः) अपने स्थानसे उसको कोई हटा नहीं सकता। अपने स्थानका संरक्षण करके वह अपने स्थानमें सुस्थिर रहता है।

वरिष्ठ इन्द्र

इन्द्र वरिष्ठ है, श्रेष्ठ है इस विषयमें नीचे दिये मंत्र देखिये—

१ इन्द्रः सदसो वरीयान्। ऋ. ३।३६।६

२ कृत्वा वरिष्ठं। ऋ. ८।९७।१०

३ सत्रासाहं वरेण्यं सहोदां। ऋ. ३।३४।८

४ यो गवां गोपतिर्वशी। ऋ. १।१०१।४

'(१) इन्द्र सभासे-अन्तरिक्षसे-बडा है। (२) अपने कर्म करनेकी शक्तिसे वह इन्द्र श्रेष्ठ है। (३) (सत्रा-साहं) एक साथ शत्रुको जीतनेवाला श्रेष्ठ और बल देनेवाला इन्द्र है। (४) जो (वशी) अपने वशमें करनेवाला गौओंका स्वामी इन्द्र है।

इन मंत्रोंमें वरिष्ठ-श्रेष्ठ इन्द्र है ऐसा कहा है।

महान् इन्द्र

१ महान् इन्द्रो य ओजसा। ऋ. ८।९।१

२ भुवस्त्वं इन्द्र ब्रह्मणा महान्। ऋ. १०।५०।४

३ महान् महीभिः शचीभिः। ऋ. ८।२।३२

इन्द्र अपनी शक्तिसे महान् है। हे इन्द्र! तू ज्ञानसे बडा है। बडी शक्तियोंसे तू महान् हुआ है।

इन्द्रको उसके ज्ञानसे तथा सामर्थ्यसे महत्ता प्राप्त हुई है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

सत्त्ववान् इन्द्र

१ तमु ष्टुहीदं यो ह सत्त्वा यः शूरो मघवा यो रथेष्ठाः । ऋ. १।१७३।५

२ स सत्यसत्त्वन् महते रणाय । ऋ. ६।३१।५

३ इदं नमो वृषभाय स्वराजे सत्यशुष्माय ।
ऋ. १।५१।१५

जो (सत्त्वा) बलवान्, जो शूर और रथमें बैठनेवाला और (मघवा) धनवान् है, उसकी स्तुति करो । वह बडे युद्धके लिये (सत्य-सत्त्वा) सच्चा बलवान् है । (वृषभाय स्वराजे) बलवान्, स्वराज्य शासक (सत्य-शुष्माय) और सच्चे बलवान्के लिये हम नमस्कार करते हैं यहां इन्द्रको बलवान् कहा है ।

त्वरासे कार्य करनेवाला इन्द्र

नक्षद्दामं ततुरिं पर्वतेष्ठां । ऋ. ६।२२।२

(नक्षत्-द्दामं) शत्रुका नाश करनेवाला (ततुरिं) त्वरासे कार्य करनेवाले (पर्वते-ष्ठां) पर्वत पर रहनेवाले इन्द्रकी स्तुति करते हैं ।

उग्रं ओजिष्ठं तवसे तरस्विनम् । ऋ. ८।९७।१०

उग्र (ओजिष्ठं) बलवान् (तवसे तरस्विनं) शत्रुवधके कार्यमें अति वेगसे कार्य करनेवाला है ।

त्वं सत्पतिः मघवा नः तरुत्रः । ऋ. १।१७४।१

तू सत्य राजा, (मघवा) धनवान् (नः तरुत्रः) हमारा सत्वर रक्षण करनेवाला है ।

इस प्रकार इन्द्र जो कार्य करता है वह सत्वर करता है ऐसा उसका वर्णन वेदमन्त्र करते हैं । कार्य करनेमें आलस्य न करना और जो कार्य करना है वह त्वराके साथ करना यह शूरवीरोंके अन्दर महत्त्वका गुण है ऐसा समझा जाता है ।

सार्वजनिक हितके कार्य करनेवाला

इन्द्र सार्वजनिक हितके कार्य करनेमें सदा दक्ष रहता है इस विषयमें देखिये—

इन्द्रस्तुजो बर्हणा आविवेश
नृवद् दधानो नर्या पुरूणि ॥ ऋ. ३।३४।५

इन्द्र (बर्हणा तुजः आविवेश) वेगसे शत्रुसेनामें प्रविष्ट हुआ और वहां (नृवत्-दधानः) नेताके समान कार्य तथा (पुरूणि नर्या) बहुत सार्वजनिक हितके कार्य उसने किये ।

इसमें (पुरूणि नर्या) ये पद सार्वजनिक हितके कार्य दर्शानेवाले पद हैं । ' नर्य ' का अर्थ सब जनोंके हितके कार्य हैं ऐसे कार्य इन्द्र सदा करता रहता है ।

इन्द्रका प्रभाव

इन्द्रका प्रभाव अनेक रीतियोंसे वेदमें वर्णन किया है, उनमेंसे कुछ मंत्र देखिये—

तं इन्द्रं जोहवीमि मघवानं उग्रं ।
सत्रा दधानं अप्रतिष्कुतं शवांसि । ऋ. ८।९७।१३

(तं इन्द्रं) उस इन्द्रका (जोहवीमि) मैं वर्णन करता हूं जो (मघवानं उग्रं) धनवान् है, उग्रवीर है (सत्रा-दधानं) साथ साथ अनेक सामर्थ्य धारण करनेवाला (अ-प्रतिः-कुतं) और पराभूत न होनेवाला है । तथा—

त्वं दाता प्रथमो राधसामसि
असि सत्य ईशानकृत् ॥ ऋ. ८।९०।२

(त्वं राधसां प्रथमः दाता असि) तू धनोंका श्रेष्ठ दाता हो और तू (सत्यः ईशानकृत् असि) सच्चे अधिपतियोंका निर्माण करनेवाला हो ।

वाजेषु प्रासहं युजम् । नहि त्वा शत्रुः स्तरते
स्तृणोषि यम् । विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यम् ॥
ऋ. १।१२९।४

(वाजेषु प्रासहं युजं) युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाले ऐसे योग्य तुझ वीरको बुलाते हैं । (त्वा शत्रुः नहि स्तरते) शत्रु तेरा पराभव नहीं कर सकता (यं स्तृणोषि) जिसके साथ तू युद्ध करता है । (विश्वं शत्रुं स्तृणोषि यं) सब शत्रुओंका तू पराभव करता है ।

शिक्षा नरः समिथेषु प्रहावान् । ऋ. ४।२०।८

तू (नरः शिक्षा) लोगोंको सन्मार्गका शिक्षण देता है तथा (समिथेषु प्रहावान्) युद्धोंमें शत्रुपर प्रहार करके उनका नाश करता है ।

चत्वारि ते असुर्याणि नाम अदाभ्यानि महिषस्य सन्ति ॥ ऋ. १०।५४।४

हे इन्द्र ! (ते महिषस्य) तुझ महिष जैसे बलवान् वीरके (अदाभ्यानि) कभी न दबनेवाले (चत्वारि असुर्याणि) चार प्रकारके बल हैं ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इन्द्रके पास सहस्रों साधन हैं

इन्द्रके पास सहस्रों साधन हैं जिनका उपयोग वह जनहितके कार्योंके करनेमें करता है—

स वज्रभृद् दस्युहा भीम उग्रः
सहस्रचेताः शतनीथ ऋभ्वा।
चम्रीषो न शवसा पाञ्चजन्यो
मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ऋ. १।१००।१२

(सः वज्रभृत्) वज्र धारण करनेवाला, (दस्यु-हा) दुष्टोंका वध करनेवाला (भीमः उग्रः) भयंकर उग्रवीर (सहस्र-चेताः) सहस्रों उत्तम विचारोंको धारण करनेवाला (शत-नीथः) सैंकडों युद्ध नीतियोंको जाननेवाला (ऋभ्व) बलवान् (शवसा न चम्रीषो) शक्तिसे जैसे भरा हुआ (पांचजन्यः) पंचजनोंका हित करनेवाला इन्द्र मरुतोंके साथ रहकर हमारा हित करे।

यहां पञ्चजनोंके हित करनेके सहस्रों साधन इन्द्रके पास हैं ऐसा कहा है।

स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः
सहस्रमूतिः तविषीषु वावृधे ॥ ऋ. १।५२।२

(सः पर्वतः न) यह पर्वतके समान (धरुणेषु अच्युतः) युद्धोंमें स्थिर रहता है (सहस्रं ऊतीः) हजारों संरक्षणोंके साधनोंसे युक्त होकर (तविषीषु वावृधे) युद्धोंमें बढता है।

शतं ऊतिः खजं करः। ऋ. १।१०२।६

इन्द्र सैंकडों संरक्षणके साधनोंके साथ रहता है और वह युद्ध करनेवाला है।

इन्द्रके गुण

इन्द्रके अनेक गुण हैं उनका संग्रह अब यहां करेंगे—

१ अ-कल्पः (ऋ. १।१०३।६)— कल्पनामें न आये ऐसी विलक्षण शक्तिसे युक्त।

२ अ-युजः (८।६५।२)— इसके समान दूसरा कोई नहीं है।

३ अ-सम्मः (८।६५।२)— इन्द्रके समान दूसरा कोई वीर नहीं है।

४ अ-प्रति-ष्कुतः (८।९७।१२)— जिसका प्रतिकार कोई नहीं कर सकता।

५ अच्युता वीळिता स्वोजा (६।२२।६)— न हिलनेवाले शत्रुको अपनी शक्तिसे हिलाकर उखाड कर फेंकनेवाला।

६ अ-दयो वीरः (१०।१०३।७)— शत्रुके साथ दया न दिखानेवाला, दुष्ट शत्रुके साथ क्रूरतासे काम लेनेवाला वीर।

७ अभयं कृणोतु (६।४७।१२)— सब शत्रुओंको दूर करके निर्भयता करे, हमारे अन्दरके तथा बाहरके सब शत्रुओंको दूर करके हमें निर्भय करे।

८ अभिगुः (८।७०।१)— शत्रुपर हमला करनेवाला, शत्रुपर आगे बढनेवाला।

९ अजुर्यः (२।१६।१)— जो क्षीण नहीं होता।

१० अ-द्रोघ-वाक् (६।२२।२)— जो द्रोहका भाषण कभी करता नहीं।

११ अन्-ऊर्मिः (८।२४।२२)— जिसके कार्यमें कोई रुकावट डाल नहीं सकता।

१२ अ-पराजितः (१।११।२)— जो कभी पराजित नहीं होता।

१३ अपारेण महता वृष्ण्येन विश्वा सहांसि अति-प्र-त्वक्षाणः (१०।४४।१)- अपार बडे सामर्थ्यसे शत्रुके सब बलोंको अत्यंत निर्बल बनाता है।

१४ जहि यो नो अघायति (१।१३१।७)— जो हमें पापके मार्गसे चलाता है उसको परास्त कर।

१५ अमित्रयन्तं मर्त्यं जहि (१।१३१।७)— शत्रुके समान बर्ताव करनेवाले मनुष्यको नष्ट कर।

१६ अपूरुषघ्नो अप्रतीतः त्रिःसप्त शूर सत्वभिः (१।१३३।६)

इक्कीस प्रकारके बलोंसे युक्त हे शूर इन्द्र! तू युद्धसे पीछे नहीं हटता और अपने वीर पुरुषोंका बंधन हो ऐसा प्रबंध करता है।

१७ अभिभुः (२।२१।२), अभिभूतरः नरः (८।९७।१)- शत्रुका पराभव करनेवालोंमें श्रेष्ठ नेता।

१८ अभिभंगः (२।२१।२)- शत्रुके सैनिकोंको तोडनेवाला, उनमें विभाग करनेवाला।

१९ अभिवीरः (१०।१०३।५)— सब प्रकारसे श्रेष्ठ वीर।

२० अभिसत्वा (१०।१०।३५)— अधिक सामर्थ्यवान्।

२१ अमितौजाः (१।११।४)— अपरिमित सामर्थ्यवान्।

२२ अमितक्रतुः (१।१०२।६)— असंख्य कर्म करनेवाला।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

२३ आसुरिः (८।९७।१०)— सब शत्रुओंको मारनेवाला।

२४ अ-षाळ्हः (२।२१।२)— जो कभी पराभूत नहीं होता।

२५ आर्य सहो वर्धय द्युम्नं इन्द्र (१।१०३।३)— हे इन्द्र! आर्योंका तेजस्वी बल बढा।

२६ इन-तमः (३।४९।२)— अत्यंत सामर्थ्यवान्।

२७ उग्रः (१०।१०३।५)— उग्रवीर।

२८ उग्रधन्वा (,,)— जिसका धनुष्य बडा प्रभावशाली है।

२९ ऊतिः (६।२४।२)— संरक्षण करनेवाला।

३० ऋधावान् (३।३१।३)— यशस्वी

३१ ऋतुना साकं जातः (२।२२।३)— पुरुषार्थके साथ प्रसिद्ध।

३२ ओजिष्ठः (८।९७।२०), ओजः मिमानः (२।१७।२), प्रतिमानं ओजसा (१।१०२।६), ओजसा शवोभिः मज्मना संविव्यानः (१।१३०।४) ओजीयान् (६।२०।३), ओजः श्रद्दधानः (११।१०३।३), ओजसा साकं जातः (२।२२।३), वीर्यैः सह वृद्धः (२।२२।३)— शारीरिक बलसे युक्त, प्रभावी बलसे युक्त।

३३ कर्मणि कर्मणि स्थिरः (१।१०१।४)— प्रत्येक कर्ममें स्थिर रहकर कार्य करनेवाला।

३४ कारु-धायाः (६।२४।२)— कारीगरोंका आधार।

३५ कविः ( )— ज्ञानी, दूरदर्शी।

३६ खजंकरः (१।१०२।६)— युद्धमें बडा कतल करनेवाला।

३७ गव्युः (७।३१।३) गोपतिः (३।१०१।४ (— गौओंका पालनेवाला।

३८ चौत्न्यो भवनून् विश्वस्मिन् भरे (१०।५०।४) — सब प्रकारके युद्धोंमें मानवोंका उत्साह बढानेवाला।

३९ चर्षणीनां एकः (१।१७६।२) चर्षणीनां राजा (८।७०।१)— मानवोंमें श्रेष्ठ, मानवोंका राजा।

४० च्यवनं अच्युतानाम् (८।९६।४)— न हिलनेवाले शत्रुओंको अपने स्थानसे उखाडकर फेंकनेवाला;

४१ जरयन्तं उक्षितं (२।१६।१)— शत्रुको क्षीण करनेवाला (उक्षितं) सुदृढ हुए शरीरावयव जिसके ऐसा वीर।

४२ जेता (१।११।१)— विजयी।

४३ ज्यायान् (१०।५०।५)— श्रेष्ठ, प्रबल।

४४ ज्येष्ठराजः (८।१६।२); ज्येष्ठं वृषभाणां (१।५३।१); ज्येष्ठतमः (२।१६।१); ज्येष्ठः (८।७०।१) ज्येष्ठस्ते शुष्मः (१०।१८०।१) श्रेष्ठोंका राजा, अधिक बलवाला, बलवानोंमें श्रेष्ठ।

४५ ततुरिः (६।२४।२); तूतुजानः (१०।४४।२) तरस्वी (८।९७।१०), तुराषाट् (६।३२।५); तरुत्रः (१।१७४।१); तूर्वन् (६।२०।३) तुराय (१।६१।१) — त्वरासे कार्य करनेवाला, विजयी।

४६ तवसः तवीयान् (६।२०।३); तवसं (८।९७।१०); तुविष्मान् (१०।४४।१); तुविनृम्णः (३।३१।५); तुविग्रीवः (८।१७।८); तुविग्रये (२।२१।२); तुविकूर्मिः (३।३१।३); तविषीभिः आवृतः (१।५१।१) बलवानोंमें बलवान, सामर्थ्यवान्, पौरुषयुक्त, हृष्टपुष्ट शरीर कला, बलशाली कर्म करनेवाला;

४७ दस्युहा (१।१००।१२); दस्यवे हेतिमस्य (१।१०३।३); दस्योः आयुः अमिनात् (३।४९।२); दासाय भियसं दधाति (१०।१३०।२) दुष्टोंको मारनेवाला, दुष्टपर शस्त्र फेंक, दुष्टकी आयु कम कर, दुष्टोंके लिये भय दिखाता है।

४८ दुश्च्यवनः (१०।१०३।७)— अपने स्थानसे हिलानेके लिये कठिन।

४९ देवानां व्रतपाः (१०।३२।६)— देवोंके व्रतोंका पालन करनेवाला।

५० धृष्णुः (६।२९।३)— शत्रुको मारनेवाला, धैर्यशाली।

५१ धृषन्मनः (१।५२।१२)— शत्रुका नाश करनेके लिये जो तैयार है।

५२ नर्या पुरूणि दधानः (३।३४।५)— मानवोंके हितके बहुत कार्य करनेवाला।

५३ नर्यः (६।२४।२)— मानवोंका हित करनेवाला वीर।

५४ निष्टुरः (८।३२।२७)— शत्रुपर निष्ठुर होनेवाला।

५५ पुरुशाकाय वृष्णे (३।३५।७)— बहुत शक्तिमान्, सामर्थ्यवान्।

५६ पूर्भिद् (३।३४।१); पूर्भित्तमः (८।५३।१); पुरां भिन्दुः (१।१७६।२); विश्वासां पुरां दर्तुः

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

(६।२०।३); पुरो विभिन्दन् (१।१०३।३)— शत्रुकी नगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र है ।

५७ पर्वतेष्ठाः (६।२२।२)— पर्वतपरके किलेमें रहने वाला ।

५८ पांचजन्यः (१।१००।१२)— पंचजनोंका कल्याण करनेवाला ।

५९ पृतनाषाट् अयुध्यः (१०।१०३।७)— शत्रु-सेनाका पराभव करनेवाला, जिसके साथ युद्ध करना अशक्य है ।

६० प्रत्यक्षाणः (१०।४४।२)— शत्रुका बल क्षीण करनेवाला ।

६१ प्रथमः (२।१७।२)— सबसे प्रथम रहनेवाला ।

६२ प्रथमः उपमानां (८।६१।२)— उपमा देने योग्योंमें पहिला ।

६३ प्रलक्षिन् (८।३२।२७)— एकता करके अपना बल बढानेवाला ।

६४ प्राचामन्युः (८।६१।९)— प्रगति करनेवाला जिसका उत्साह है ।

६५ बल विज्ञायः (१०।१०३।५) — बलके लिये प्रसिद्ध ।

६६ बाहुशर्धी (१०।१०३।३)— बाहुका बल जिसमें अधिक है ।

६७ बाधतां द्वेषः (६।४७।१२)— द्वेष करनेवालोंका नाश करनेवाला ।

६८ विश्वस्मिन् भूरे ज्येष्ठः (१०।५०।४); भरे कृत्नुः (८।१६।३); भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्तु (१।१००।२)— सब युद्धोंमें इन्द्र विशेष प्रबल और श्रेष्ठ होकर रहता है, युद्धमें इन्द्र अपना कर्तृत्व दिखाता है प्रत्येक युद्धमें वृत्रको मारनेवाला इन्द्र बलवान् रहता है ।

६९ भद्र-व्रातः (१०।४७।५)— सार्वजनिक कल्याण करनेवाले जिसके सैनिक हैं ।

७० भीमः (१।८१।४)— भयंकर शूर !

७१ मघवा (१।१७३।५)— धनवान् ।

७२ महेमते (८।३४।७)— महा बुद्धिमान् ।

७३ मन्युना इन्द्रेण वयं अभिष्याम पृतन्यतः (अथर्व. ७।९३।१)— उत्साही इन्द्रकी सहायतासे हम शत्रुसेनाका पराभव करेंगे ।

७४ महाव्रातः (ऋ. ३।३१।३) — बडी सेनासे युक्त ।

७५ महावधः (५।३।४२)— बडा कतल करनेवाला, बडे शस्त्रोंवाला ।

७६ महिष्ठः (१।१३१।१); महिषः (१०।५४।४); मायया वावृधानं (६।२२।४)— शक्तिसे महान्, शक्तिमान्, कुशलतासे कार्य करनेवाला ।

७७ रामः (८।२४।२२)— नियमोंके अनुसार शासन करनेवाला ।

७८ युवा (२।१६।१)— कितनी भी आयु होनेपर तरुण जैसा कार्य करनेवाला ।

७९ योधीयान् (१।१७३।५)— युद्ध करनेमें चतुर ।

८० रथी, रथेष्ठाः (१।१७३।५)— उत्तम रथमें बैठनेवाला ।

८१ राय ईशानः (८।५३।१)— धनोंका स्वामी ।

८२ वज्री (६।१९।२); वज्र हस्तः (६।४६।१); वज्रभृत् (१।१००।१२)— वज्र धारण करनेवाला ।

८३ वरिष्ठः (८।९७।१०); वरीयान् (३।३६।६); वरेण्यः (३।३४।८)— वरिष्ठ, श्रेष्ठ, समर्थ ।

८४ वपोदरः (८।१७।८)— जिसका पेट बडा है ।

८५ वर्षनीतिः (३।३४।३)— कुशल, नीतिमान् ।

८६ वशी (१।१०१।४)— सबको वशमें करनेवाला,

८७ वृथा-षाट् (१।६३।४)— सहजहीसे शत्रुको नष्ट करनेवाला,

८८ वाजी (८।२४।१२)— बलवान् ।

८९ वीरवान्, विप्रवीरः (१०।४७।५)— वीरोंके साथ रहनेवाला, ज्ञानी ।

९० विश्वासां पृतनानां तरुता (८।७०।१)— सब शत्रुसेनाका नाशक ।

९१ विचेताः (६।२४।२); वेधाः (२।२१।२); विश्ववेदाः (६।४७।१२)— विशेष बुद्धिमान् ।

९२ वीरः (६।२४।२); प्रवीरः (६।२४।२); अभिवीरः (१०।१०३।५)— शूरवीर,

९३ शतक्रतुः (१।४।९)— सैकडों कर्म करनेवाला ।

९४ शासः (२।४७।५)— उत्तम शासक ।

९५ वृषभः (१।५१।१५)— बलवान् ।

९६ शतमूतिः (१।१०२।६)— सैकडों रक्षणोंके साधन जिसके पास है ।

९७ शत्रून् विदयमानः (३।३४।१)— शत्रुओंका विनाश करनेवाला ।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

९८ शवसः पतिः (१।११।२)— बलका स्वामी।

९९ शूरः युत्सु (२।१७।२)— युद्धोंमें शूर।

१०० सजूः (८।९७।१०)— अपने साथियोंके साथ मित्रतासे रहनेवाला।

१०१ सत्रा-सहः (३।३४।८)— एकदम शत्रुका पराभव करनेवाला।

१०२ सत्वा (१।१७३।५)— बलवान्।

१०३ सहस्रोतिः (८।३४।७)— हजारों रक्षणके साधनोंसे युक्त।

१०४ सुप्राव्यः प्राशुषाट् एष वीरः (४।२५।६)— उत्तम रक्षण करनेमें समर्थ और त्वरासे शत्रुको परास्त करनेमें समर्थ वीर।

१०५ सम्राजं चर्षणानां (१०।१३४।१); समत्सु शूरः (१।१७३।७)— लोगोंका सम्राट्, युद्धोंमें शूर।

१०६ संघाता संघिं इष्कर्ता वि-हुतं पुनः (८।१।१२) — जखमको शीघ्र ठीक करनेवाला, कटे हुए भागको फिर ठीक करनेमें समर्थ।

१०७ सहस्वान् (१०।१०३।५); सुत्रामा (६।४७।१२)— बलवान्, रक्षक।

१०८ स्वभूत्योजाः (१।५२।१२)— अपने सामर्थ्यसे बलवान्।

१०९ समत्सु नो वृधे भवा (६।४६।३)— युद्धोंमें हमारा संवर्धन करनेवाला हो।

११० सुशिप्रः (३।३१।३)— उत्तम शिरस्त्राण धारण करनेवाला।

१११ स्वयुः स्वराट् (३।४५।५)— अपने तेजसे युक्त।

११२ हिरण्ययुः (७।३१।३)— सुवर्णसे युक्त।

ये विशेषण देखनेसे हमारे इन्द्र महाराज संरक्षणमंत्रीके कार्यके लिये किस तरह अत्यंत योग्य थे इसका निश्चय हो सकता है।

इन्द्र देवताका परिचय

विश्वराज्यके संरक्षक मंत्रीका परिचय

नाम	पृष्ठ	नाम	पृष्ठ
१ इन्द्रकी विद्वत्ता	४१४	१९ गौरवर्ण इन्द्र	४१९
२ इन्द्र विशेष विद्वान् है	४१५	२० दर्शनीय इन्द्र	४१९
३ विपश्चित् इन्द्र	४१६	२१ सुवर्ण सा वर्णवाला इन्द्र	४१९
४ कवियोंमें श्रेष्ठ कवि	४१६	२२ आयुधोंको धारण करनेवाला इन्द्र	४१९
५ इन्द्र सूरि है	४१६	२३ धनुर्धारी इन्द्र	४२०
६ विश्ववेदा इन्द्र	४१६	२४ वज्रधारी इन्द्र	४२०
७ मनस्वी इन्द्र	४१६	२५ कर्तृत्ववान् इन्द्र	४२०
८ बुद्धिमान् इन्द्र	४१७	२६ इन्द्रका शिरस्त्राण	४२०
९ जाग्रत बुद्धिमान् इन्द्र	४१७	२७ इन्द्रका चोगा	४२०
१० अजातशत्रु इन्द्र	४१७	२८ इन्द्रका कवच	४२०
११ प्रवचन कर्ता इन्द्र	४१७	२९ इन्द्रका बल और सामर्थ्य	४२१
१२ इन्द्रके शरीरावयव, अस्त्र और पोषाक	४१७	३० वरिष्ठ इन्द्र	४२१
१३ उग्रबाहु इन्द्र	४१७	३१ महान् इन्द्र	४२१
१४ इन्द्रकी दो शिक्षाएँ	४१८	३२ सत्ववान् इन्द्र	४२२
१५ वज्रबाहु इन्द्र	४१८	३३ त्वरासे कार्य करनेवाला इन्द्र	४२२
१६ मूंछें हिलानेवाला इन्द्र	४१८	३४ सार्वजनिक हित करनेवाला	४२२
१७ इन्द्रका सुडौल शरीर	४१८	३५ इन्द्रका प्रभाव	४२२
१८ बडे पेटवाला इन्द्र	४१९	३६ इन्द्रके पास सहस्रों साधन	४२३
		३७ इन्द्रके गुण	४२३

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्रह्म राम तँ नाम बड-बर दायक वर दान
राम चरित सत कोटि महँ--लिय महेश जिय जानि

रामधुनका महत्व और प्रयोजन

लेखकः— सुब्रह्मण्यम् " मंद "

एम. बी. बी. एस, एम. ए. (संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, भूगोल, गणित) एम. एस. सी. (वनस्पति), एम. काम; एल. एल. बी., तर्क., व्याकरण, ज्योतिष, भिषगाचार्य, साहित्यरत्न, काव्यतीर्थ, निगमागम विशारद, सकलकलाकोविद ।

(यह रचना आस्तिक नास्तिक सभी मानव संस्कृतिके प्रेमी विचारकोंका हृदय रामधुनकी ओर आकर्षित करनेके लिये है । कोई भी व्यक्ति अपनी किसी भी इन्द्रियसे रोगी मिथ्याभियुक्त, अकुशल, अस्थिर होकर सुखी व शान्त नहीं हो सकता । किन्तु कोई भी अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलतासे अपने समग्र मनसे ऊपर उठकर हो जहां यथार्थसे सर्वथा अनुप्राणित रह सकता है वहां यथार्थसे सर्वथा अनुप्राणित रह कर ही अपनी किसी भी इन्द्रियके कार्यको सन्तुलित एवं स्वाभाविक रखकर निरोग, मनोरम-मिथ्याभियुक्तताहीन, कुशल, स्थिर हो सकता है ।

ऐसी स्थितिमें मानव समाजके सम्मुख सिवाय इसके और कोई समस्या नहीं कि व्यक्ति अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलताके हेतु भूत अपने व्यष्टिभावसे ऊपर उठकर उस समष्टि भावमें निरन्तर कैसे रमे— ? जो उसकी प्रत्येक इन्द्रियकी सन्तुलित एवं स्वाभाविक स्थितिका मनोवैज्ञानिक रीतिसे विधान करता है— ' मन्द ')

भक्ति ही हमारे यहां प्रत्येक मानवीय सत्व अर्थात् समग्र मनकी स्वस्थता (निरोगता), रमणीयता (मनोरमता), पटुता (कुशलता), निश्चलता (स्थिरता) की यथार्थ स्थितिरूप प्राप्ति अर्थात् अनुभवसिद्ध ज्ञान और अनुभवोत्तर विज्ञानका एक मात्र साधन है । यह भक्ति, वस्तुतः अहंकार अर्थात् व्यष्टि भावकी अनुकूलता प्रतिकूलतासे ऊपर उठकर, सत्य अर्थात् समष्टि भाव या व्यष्टिभाव शून्यता रूप स्वभाव स्थितिके प्रति, निर्भर आस्थाऽनुराग या भरोसा रखकर उसकी सर्वानुकूलताका अनुशीलन और अनुसरण करने ही का दिव्य नाम है ।

इस भक्ति भावके बिना अहंकारकी सर्वप्रतिकूलता रूप मिथ्यासे अवगत होकर अभिप्रेतकी ' प्राप्ति ' के हेतुभूत समग्र मन-मन (मनन) बुद्धि (विवेचना), चित्त (सम्वेदन) इन सूक्ष्मेन्द्रियों और आँख, कान, जीभ, नासिका, त्वचा इन ज्ञानेन्द्रियों, वाणी, हाथ, पैर, गुदा, उपस्थ इन कर्मेन्द्रियों या स्थूलेन्द्रियोंसे परिपूर्ण सम्पूर्ण सत्ता— अथवा इसी मनके रूपक हृदयकी अहंकार शून्यता प्राप्त नहीं की जा सकती । कहा भी गया है—

सो (भक्ति) सुतन्त्र अवलम्बन आना ।
तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना ॥

रा. च. मा. अर. कां. १६

ऐसी स्थितिमें, जबकि भक्ति हो; सर्वप्रतिकूल अहंकार रूप मिथ्यासे ऊपर उठकर सर्वानुकूल सत्यका अनुसरण करने तथा इस प्रकार समग्र मनकी स्वस्थता, रमणीयता पटुता, निश्चलता आदि प्रत्येक मानवीय सत्वकी प्राप्ति करनेका एक मात्र साधन है तब इस भक्तिभावके बिना कोई भी कैसे विवेकी रह सकता है ? निश्चय ही वह व्यक्ति जो इसको छोडकर अन्यान्य विषयोंमें रत रहा करता है,

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐसा मूर्ख होता है जो कांच टुकड़ोंके लिये पारसमणिको हाथसे फेंक देता है—

सो (नर) तनु धरि भजहि न जे नर, होहि विषय रत मंद मंदतर। कांच किरिच बदले ते लेही, करते डारि परस मनि देही ॥

उ. कां. १२९

किन्तु आज भक्ति केवल भोंदुपन ही की चीज समझी जाती है। हां, आज कुछ ऐसे भी लोग अवश्य हैं जो भक्ति को महान् और भक्तोंको महात्मा समझते है पर वे भी उनको कुछ इस प्रकार किनारे ढकेलते हैं कि वे लोकमें कभी उपयोगी सिद्ध नहीं होते। बात यह है कि मानवमें जब भक्ति भावका जरा भी लोप होता है तब वह कुछ इस प्रकार अहंकारके वशीभूत हो जाता है कि जहां उससे अपने को कभी किसी प्रकार छुटा नहीं पाता, वहां जाने अनजाने में उसीके एक मायिक अर्थात् मिथ्या कल्पित अनुकूल प्रतिकूल भावमें अपनेको सर्वथा भूले रहता है—

उसका मन सर्वदा एक मायिक वस्तु ही के स्पर्शमें सन्तप्त रहता है, उसकी बुद्धि सर्वदा एक मायिक रूप ही की कल्पनामें विमोहित रहती है, उसका चित्त सर्वदा एक मायिक रस ही के आस्वादनमें व्यामोहित रहता है और उसके बाद उसकी ज्ञानेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय विशिष्ट स्थूल सत्ता भी उसी एक मायिक गन्धमें गुंझित होकर, जिसमें उसके अपने मन बुद्धि और चित्त हैं, नाना रीतिसे स्पन्दित शब्दित रहती है। ऐसी अवस्थामें क्या आश्चर्य है कि कोई भक्तिको स्वीकार करनेमें कुछ आनाकानी करे और कोई उसे भोंदूपन भी समझे अथवा कहे—?

हरि माया बस जगत् भ्रमाही-तिनहि कहत कछु अघटित नाहीं। बा. कां. ११५

वरना भक्तिकी जो वस्तुतः प्रेमतत्व, श्रद्धातत्व, हृदय-तत्वके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है ऐसा कोई भी व्यक्ति कोई उपेक्षा नहीं करता, जो अपने किसी लक्ष्य सिद्धान्त, उद्देश्य, विचार, आकांक्षा या इष्टके प्रति जरा भी ईमानदार हो अथवा रहना चाहता हो।

फिर भी आज इस भक्तिको कोई कैसे अपनावे? इसमें कोई सन्देह नहीं कि भक्ति अन्य कुछ नहीं है, बल्कि अहंशून्य-लौकिक भेदभाव रहित, सत्यशील-यथार्थानुगामि, स्वयंपूर्ण-समग्र मनकी स्वस्थता, रमणीयता, पटुता, निश्चलतापूर्ण सम्पूर्ण स्वावलम्बी मानव-हृदय ही है। यह हृदय ही मानवको उसकी मानवतासे जोडता है; मानवको मानवसे जोडता है; मानवको जगत्से जोडता है; सबके ऊपर जो कालातीत, वर्णनातीत, विषयातीत है, उस स्वभावस्थितिकी ओर उसे उन्मुख करता है; और इसके अतिरिक्त दर्शनमें यही आत्मानुभव है।

क्योंकि उसीसे सत्य सर्वत्र समान रूपमें और इस प्रकार अपनी आत्माके रूपमें देखा और अनुभव किया जा सकता है; कलामें यही दृष्टि है, क्योंकि इसीसे इन्द्रिय कौशल आत्माकी अभिव्यक्तिके रूपमें व्यक्त और दृष्ट हो पाता है; साहित्यमें यही अनुभूति है, क्योंकि इसीसे मनोधर्म अर्थ और वचोधर्म शब्द आत्मानुभूतिके साथ साहित्य-साथ साथ रहनेके रूपमें सध सकते हैं, काव्यमें यही रस है, क्योंकि इसीसे मनोभाव आत्म वस्तुके रूपमें अभिवर्णित होकर आस्वाद्य हो पाते हैं—

भक्ति सुतन्त्र सकल सुख खानि। उ. कां. ४५

किन्तु प्रश्न है कि मानव अपने इस हृदयको कैसे पहिचाने? क्योंकि वह सदासे 'माया' बद्ध है—

फिरत सदा माया कर प्रेरा। उ. का. ४४

परन्तु यह बात कदापि नहीं कि वह अपने स्वभावसे ही मायामें बद्ध है स्वभावसे तो वह 'ईश्वर' ही है, और मायाके कारण ही वह उससे अलग, जीव रूपमें विभाजित होकर बंधा पडा है—

ईश्वर अंश जीव अविनासी, चेतन अचल सहज सुखरासी। सो माया बस भयउ गोसाईं बंध्यो कीर मरकट की नाईं ॥ उ.कां.११७

मायाका अर्थ "मैं मेरा" की व्यष्टिगत सर्व प्रतिकूल मिथ्या मनोभावना; जीवका इस भावनासे प्राप्त अज्ञ अभागी बद्ध जीवन और ईश्वरका इससे मुक्त समष्टिगत सर्वाधिष्ठान सर्वात्मभूत सर्वानुकूल स्वभावस्थिति रूप वह ब्रह्मतत्वमय सर्वोपरि ऐश्वर्य, जो इस माया परिलक्षित समस्तका मूल प्रेरक है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मैं अरु मोर तोर तैं माया, जेहि वस कीन्हें जीवनिकाया ।

\+ × +

माया ईसन आयु कहूँ, जान कहिय सो जीव बन्ध मोच्छ पद सर्वपर, माया प्रेरक सीय ।

अर. कां. १५

इसी मायामें, मै-मेरा ही की प्रेरणामें वह हरेक बात सोचता समझता है अथवा यों कहिये कि व्यक्ति कोई बात इसलिये सोचता समझता है कि वह उसके अनुकूल या प्रतिकूल है, इसलिये नहीं कि वह सबके अनुकूल या प्रतिकूल है । हां, वह अवश्य ही कभी कभी कोई कोई बात अपनी अनुकूलता-प्रतिकूलतासे बिलकुल तटस्थ और उदासीन होकर भी सोचता समझता है; किन्तु जब उस बातमें उसकी अपनी अनुकूल प्रतिकूल बातके स्पष्ट विरोधमें स्थूल सूक्ष्म दोनों रीतियोंसे स्थिर बने रहता होता है, तब उसके साथ उसके हृदयका कोई लगाव नहीं रहता; क्योंकि जब एक बार सत्य और उसकी सर्वानुकूल स्थितिसे दूर अपनी कोई अनुकूल प्रतिकूल बात ग्रहण कर लेता है, तब वह अपनी उस बातको छोडकर अन्य कोई बात कभी स्थिरतासे जहाँ ग्रहण ही नहीं कर पाता यहां जाने अनजानेमें उसीके अभिमानमें अर्थात् उसीको सोचता समझता, उसीको करता सुनता, उसीको देखता धरता, उसीसे स्पन्दित होता हुआ उसीमें उलझे रहता है और उसकी यह अवस्था तब तक बनी रहती है जब तक कि वह उससे अपने समग्र मनसे मुक्त नहीं होता ।

ऐसी अवस्थामें मानव भक्तिको अपनाता तो क्या, पहिचान भी नहीं सकता । इस अवस्थामें वह सर्व प्रथम मोह अर्थात् (मुह वैचित्ये) मिथ्या ज्ञान या अभिमानमें आकर अपने समष्टिगत अहंशून्य स्वभावसे अपनी एक अलग व्यक्तिगत अहंपूर्ण स्थितिमें मुग्ध होता है; इसी मोह मुग्ध स्थितिमें, उसका मन विषय अर्थात् (विष बन्धने) अनुकूलता प्रतिकूलता बद्ध भावमें आसक्त होकर उसके मननसे एक विलक्षण वस्तुके स्पर्शमें सन्तप्त होता है; इसी सन्तपनमें उसकी बुद्धि विषयकी विवेचना कर मोहातिरेकसे एक विलक्षण रूपकी कल्पनामें विमोहित होती है; इसी विमोहमें उसका चित्त विषयका सम्वेदनकर मोहावेशसे एक विलक्षण रसके आस्वादनमें व्यामोहित होता है; उसके बाद इसी व्यामोहमें उसकी ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रियां या स्थूलेन्द्रियां विषयहीको अपनी सत्ताके रूपमें आकर उसके सुख अर्थात् अनुकूलतामें निस्पृहता रूप मादकता और दुःख अर्थात् प्रतिकूलतामें उद्विग्नता रूप वेदनाकी एक विलक्षण गन्धमें गुंफित होकर नाना भांति स्पन्दित होती हुई उसीसे अनुप्राणित रहती हैं और वह इस प्रकार अपने समग्र मनसे विषयासक्त होकर जहां अपने सर्वाधिष्ठान, सर्वात्मभूत, सर्वानुकूल स्वभावस्थित रूप ब्रह्मतत्वसे दूर हो जाता है, वहां उससे वंचित परिवंचित होकर घोर अनर्थको प्राप्त होता है ।

वह मनसे जहां तत्वके अग्रहण रूप निद्राके वशीभूत होता है वहां उसकी तन्द्रामें अपनी स्थूल सूक्ष्म समस्त इन्द्रियोंको शिथिल कर उनकी स्वस्थता खोता है; वह बुद्धिसे जहां अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रमके वशीभूत होता है वहां उसके अभिमानमें अपनी प्रत्येक क्रिया और घडकनसे अभिप्राप्त (मिथ्याभियुक्त) होकर अपनी रमणीयता खोता है; वह चित्तसे जहां आत्मनुभवके अभाव रूप विकारके वशीभूत होता हैं वहां उसकी कामनामें रति, संयोगमें हास, वियोगमें दुःख, आतुरतामें क्रोध, आशामें उत्साह, निराशामें भय, विकृतिमें जुगुप्सा या घृणा, आकस्मिकता (अनूह्यता) में आश्चर्य और प्राप्तिमें निर्वेद या सुख इन मनोभावोंको प्राप्त होकर उनमें अपने वीर्य अर्थात् इन्द्रिय शक्तिकी पटुता खोता है ।

वह ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय विशिष्ट स्थूल सत्तासे जहां आत्म साक्षात्कारामाव रूप अभाव्यके प्रमादके वशीभूत होता है वहां उसकी मोह-विमोह-व्यामोहित गर्भित प्रमत्तता अर्थात् निद्रा-भ्रम-विकार मुद्रित अकृतार्थताकी सुस्ती-मस्तीमें क्षुधा-पिपासा, सर्दी-गर्मी, भाव-अभाव, ऊंच-नीच, मान-अपमान, शत्रु-मित्र, सम्पत्ति-विपत्ति आदिमें आन्दोलित होते हुए अपने तनमनकी निश्चलता खोकर नितान्त अज्ञ अभागी बद्ध जीवन व्यतीत किया करता है । यहां मानवीय संस्थाओंका यह निदान और दर्शनका यह निष्कर्म संस्मरणीय है

मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला, तिन्हते पुनि उपजहि बहु सूला । उ. कां. २२१

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संसृति मूल सूलप्रद नाना, सकल सोक-दायक अभिमाना । उ. कां. ७४

किन्तु आज अभिमान या अहंकारके प्रति तीव्र रोष होने पर भी अपनेको कोई माया बद्ध अज्ञ अभागी जीव नहीं समझता; सत्यके प्रति प्रगाढ आस्थानुराग होने पर भी कोई ईश्वरकी भक्ति करता । हां, आज अपनेको माया बद्ध समझकर ईश्वरको अपने सिर आंखों पर चढानेवाले कुछ आस्तिक जन भी अवश्य हैं, पर वे भी जिस साधनासे अहंकारकी सर्वप्रतिकूलता पहिचानकर सत्यकी सर्वानुकूलता सिद्ध की जाती है, उसका कभी कोई प्रकाश नहीं देते । बात यह है कि माया जो वस्तुतः सर्वानुकूल सत्यसे भिन्न, सर्व प्रतिकूल अहंकारके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है, अज्ञानकी अजागरूकतामें किसीमें भी प्रवेश कर सकती है । और जब प्रवेश करती है तब वह सर्व प्रथम उसके मन, बुद्धि और चित्तको इस तेजी और शक्तिके साथ मोह विमोह और व्यामोहसे भर देती है कि किसी भी ज्ञानी या मूढका कोई वश नहीं चल सकता—

तब ज्ञानी मूढ न कोई, बा. कां. १२४

और इसके बाद उसका हृदय तत्वके अग्रहण रूप निद्रामें निद्रित, अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रममें भ्रामित और आत्मानुभवके अभाव रूप विकारमें विकल्पित होते हुए आत्मसाक्षात्कार भावके अभाव्य रूप प्रमादमें उसके (मायाके) अनेक परदोंसे आच्छादित होकर जो कुछ सोचता समझता है, जो कुछ कहता सुनता है, जो कुछ करता धरता है उसमेंसे किसीसे भी जहां सत्यकी कभी कोई बात सोचने समझने लायक भी नहीं रहता—

माया बस मति मन्द अभागी, हृदय जमनिका बहुविधि लागी उ. कां. ७३

वहां अपने अहंकारके अनुकूल प्रतिकूल भावसे किसी प्रकार मुक्त नहीं होता । काल चक्र, उसमें केवल उसीके अपने मोह मुग्ध मनका निद्राचक्र रहता है; उस काल चक्रमें जो रात दिवसकी गति है वह उसमें केवल, उसीका अपनी विमोह विदग्ध बुद्धिका अभिवर्णित भ्रम रहता है; उस गतिमें जो चराचर जगत् और उत्पत्ति, स्थिति, लय घूर्मित हैं वे उसमें केवल उसीके अपने व्यामोहोन्मत्त चित्तका विकार विकल्प रहता है; और उस जगत्में जो अनुकूल-प्रतिकूल, तटस्थ--तादात्म्य भाव, कर्म और अनुभव हैं, वे उसमें केवल उसीकी अपनी मोह विमोह व्यामोह गर्भित नितान्त विषयासक्त सत्ताका निद्रा भ्रम- विकार प्रमाद मुद्रित प्रतिबिम्ब रहते हैं—

जोग वियोग भोग भल मन्दा-हित अनहित मध्यमभ्रम । कंदा जनम मरण जहं लगि जग जालू-सम्पति विपति करमु अरु कालू । धरनि धामु धनु पुर परिवारु-सत्यु नरकु जहं लगि व्यवहारु । देखिअ सुनिअ गुणिअ मन माहीं सौंह मूल परमाणु नाहीं ॥

ऐसी परिस्थितिमें क्या आश्चर्य है कि आस्तिक नास्तिकोंमेंसे कोई भी मायाकी स्थूल सूक्ष्म गति विधियोंके मर्मसे अवगत होकर, उससे अपने हृदयको मुक्त करनेकी ईश्वर भक्ति रूप मनोवैज्ञानिक शुभ साधनामें सर्वथा संलग्न न हो सके और उस प्रकार अपने ही लक्ष्य, सिद्धान्त, उद्देश्य विचार, आकांक्षा और इष्टके प्रति आप ही कोई ईमानदार न रह पाये—

मुकुर मलिन अरु नयन विहीना, राम रूप देखहिं किमि दीना । बा. कां. ११५

मानवकी ऐसी ही दीन हीन अवस्थाके लिये रामनाम और उसकी रटन है । ऐसे समय उसका हृदय अपनी कलि अर्थात् (कल किलक्षेपे) मोहमूलक अभ्यासके इतना विवश-विह्वल और अज्ञअधीर रहता है कि कोई भी शासन, नियम, प्रलोभन या भय उसे इस अवस्थासे उठाकर उसके स्वभावकी ओर उन्मुख नहीं कर सकता। वह कर्मयोग उसके लिये निरुपयोगी है और उसके मनको शास्त्रीय अर्थात् उसके स्वभावके (अनुभोक्ता) विज्ञान सम्मत सुखाभिव्याप्ति रूप स्वर्ग और दुःखाभिव्याप्ति रूप नरकसे आशा-भय पूर्ण मननमें प्रवृत्त कर, हृदयको तत्वके अग्रहण रूप निद्रासे मुक्त करनेके हेतु शास्त्रीय विधिसे शासित करता है ।

यह ज्ञानयोग उसके लिये निरर्थक है जो उसकी बुद्धिकी शास्त्रीय दर्शन अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कार्य कारण संबंध ज्ञान-कर्म विवेचन (तर्क) में प्रवृत्त कर हृदयको अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रमसे मुक्त करनेके हेतु शास्त्रीय विधिसे नियमित करता है; वह भक्ति योग भी उसके लिये कुछ प्रयो-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जानकारी नहीं जो उसके चित्तको शास्त्रीय रूपकों अर्थात् मनोवैज्ञानिक वस्तु रूपोंके संवेदनमें प्रवृत्त कर, हृदयको आत्मानुभवके अभाव रूप विकारसे मुक्त करनेके हेतु शास्त्रीय विधिसे प्रक्षोभित एवं भय कम्पित करता है। वह कभी इनके शास्त्रीय विधि विधानमें विश्वासके साथ सम्पूर्णतः प्रवृत्त ही नहीं हो पाता—

नहीं कलि करमु न भगति विवेकू-राम नाम अवलम्बन एकू। बा. कां. २७

ऐसी अवस्थामें उसके लिये एक ऐसा अभ्यास ही उपयुक्त रहता है, जो उसे किसी शासन, नियम प्रलोभन या भयसे विवश विह्वल न कर, उसके अपने अभिप्रेतकी ओर ईमानदारीसे प्रवृत्त कर सके और ऐसा ही अभ्यास राम-नामकी रटन है।

बात यह है कि सब व्यक्ति अपने समष्टिगत अहंशून्य स्वभावसे अपनी एक अलग, व्यष्टिगत अहंपूर्णस्थितिके रागमें आता है और जब वह उस रागमें मनन, विवेचन, संवेदन, स्पन्दनकी गतिसे किसी एक वस्तुके स्पर्श- रूप-रस गन्धके भावसे आकर अनुरंजित होता है, तब नाम अर्थात् शब्द उसके हृदयको जहां अपने अर्थतत्वके रूपमें प्रकाशित किया करता है, वहां उसके रति-हास-दुख-क्रोध-उत्साह-भय-जुगुप्सा--आश्चर्य--निर्वेद आदि प्रत्येक विकारका आरम्भ सूत्र ही बना रहता है—

वाचारंभणं विकारो नामधेयम्। छन्दो. उप.

'(आत्मा—गतिशील या भावनाशील हृदय—का) विकार वाणीसे आरम्भ होनेवाला नाम मात्र है। इस नामके बिना मानवका मनन-- विवेचन-संवेदन स्पन्दन विशिष्ट रागतत्व अर्थात् प्रेमतत्व, और श्रद्धातत्वकी व्यंजना नहीं होती, नामके बिना मानवका स्पर्श-रूप-रस-गन्ध विशिष्ट भावतत्व अभिव्यक्त नहीं होता; नामके बिना मानवका रति-हास-दुख-क्रोध-उत्साह-भय-जुगुप्सा-आश्चर्य निर्वेद विशिष्ट हृदय तत्व प्रकाशित नहीं होता।

नामतत्व या शब्दतत्व ही अपने बीजरूप ध्वनि विन्यास और फलरूप अक्षर विन्यास, पद विन्यास वाक्य विन्यासके सूत्रसे मानवके समस्त जीवनतत्व अर्थात् प्राण तत्वको अपने अर्थतत्वके रूपमें उसकी प्रत्येक क्रिया और धड़कनके साथ समेट कर जहां एक अखण्ड माला के रूपमें ग्रंथित किये हुए है, वहां उसे अपने ही अनुष्ठानके अधीन किये हुए है। जहां नामका स्फुरण नहीं होता, वहां किसी भी वस्तुको प्रत्यक्ष पाकर भी पहिचाना नहीं जा सकता, क्योंकि इस स्फुरणके पहले, शब्दतत्वके अव्यक्त रहनेवाले बीजरूप ध्वनि विन्यासके सूत्रमें ग्रंथित अर्थतत्व अव्यक्त अप्रकाशित रहता है; और जहां नामका स्फुरण होता है, वहां प्रत्येक वस्तु उसके प्रत्यक्ष न होने पर भी सम्पूर्णतः हृद्य बन जाती है, क्योंकि इस स्फुरणमें शब्दतत्वके व्यक्त रहनेवाले फल रूप अक्षर विन्यास; पद विन्यास, वाक्य विन्यासके सूत्रमें ग्रंथित अर्थतत्व व्यक्त प्रकाशित रहता है

देखि अहिं रूप नाम अधीना, रूप ज्ञान नहिं
नाम विहीना। रूप विशेष नाम बिनु जानें,
करतल गत न परहि पहिचाने॥ सुमिरिअ
नाम रूप बिनु देखें, आवत हृदय सनेह बिसेषें
बा. कां. २१

ऐसी स्थितिमें कहना न होगा कि मानव अपनी अभिप्रेत वस्तुके शुभ, निर्मल आदर्श रूपकी केवल नाम रटन ही से उसमें रागमें अनुरंजित एवं भावमें भावित होकर उसे प्राप्त कर सकता है; क्योंकि किसी भी वस्तुकी प्राप्ति अथवा अनुभव सिद्ध ज्ञान और अनुभवोत्तर विज्ञानके लिये उसके मनन-विवेचन-संवेदन-स्पन्दन विशिष्ट राग, स्पर्श-रूप-रस-गन्ध विशिष्ट भाव और रति-हास-दुख-क्रोध-उत्साह-भय-जुगुप्सा-आश्चर्य-निर्वेद विशिष्ट हृदयका होना अनिवार्य है और यह राग भाव और हृदय उस नामही के द्वारा साध्य है जो अपने ध्वनि, अक्षर, पट, वाक्यके सूत्रसे मानवके रागतत्व, भावतत्व, हृदयतत्व, और इस प्रकार समस्त जीवनतत्वको भी अपने अधीन किये हुए है और इसी नामकी रटन या अभ्याससे वह अपने राग, भाव, हृदय और जीवनको, अनभिप्रेत अहंपूर्ण दिशासे अभिप्रेत अहंशून्य दिशामें मोड सकता है—

राम नाम कलि अभिमत दाता। बा. कां. २७

अस्तु राम नामकी रटनमें— रामधुनमें व्यक्ति सर्वप्रथम उसके अव्यक्त ध्वनि विन्यासके प्रभावसे, अनायास, अनभिप्रेत अहंपूर्ण स्थितिसे अलग अपनी एक अभिप्रेत वस्तुके मोहमें खिंचकर क्रमशः उसके रागमें रंजित और भावमें भावित होने लगता है।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

इस स्थितिमें, वह अपनी मननशीलतासे, ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुके स्पर्शमें सन्तप्त होने लगता है, त्यों त्यों तत्वके अग्रहण रूप निद्रासे मुक्त होता जाता है और अपनी स्थूल सूक्ष्म समस्त इन्द्रियोंसे स्वस्थ होकर, उनके ओजमें अपने चातुर्दिक समस्त जीवन और जगतका पूर्ण और यथार्थ रूप समझने लगता है; अपनी विवेचन शीलतासे ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुकी रूप-कल्पनामें विमोहित होने लगता है, त्यों त्यों अधिष्ठानके अज्ञान रूप भ्रमसे मुक्त होता जाता है और अपनी प्रत्येक क्रिया और धडकनसे रमणीय और मधुर होकर, उसके माधुर्यमें सत्वको सर्वत्र पाने लगता है।

अपनी संवेदनशीलतासे, ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुके रसास्वादनमें व्यामोहित होने लगता है, त्यों त्यों आत्मानुभवके अभाव रूप विकारसे मुक्त होता जाता है और अपने वीर्यसे पटु होकर उसके प्रसादमें सदा प्रसन्न रहने लगता है; अपनी स्पन्दन शीलतासे ज्यों ज्यों उस अभिप्रेत वस्तुकी गंधमें गुंफित होने लगता है, त्यों त्यों आत्म साक्षात्कारके अभाव रूप प्रमादसे मुक्त होता जाता है और अपने तन मनसे निश्चल होकर उनके ओज-माधुर्य-प्रसाद गुण गर्भित समाधि अर्थात् मनोयोगमें अपनी अभिप्रेत वस्तुके शुभ, निर्मल, आदर्श रूपको हृदयके भीतर, ईश्वर भावके रूपमें प्रतिष्ठित पाने लगता है।

इसके बाद वह उसके (रामनाम के) रामायण आदि ग्रन्थोंके रूपमें व्यक्त अक्षर विन्यास, पद विन्यास, वाक्य विन्यासके अर्थ तत्वके रूपमें अपनी अभिप्रेत वस्तुका, भाषा अर्थात् अक्षरों, पदों, वाक्योंमें स्फुरण पाकर, जहां रति, हास, दुख, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, आश्चर्य, निर्वेद आदि हृदयके भावों (विकारों) के साथ उसकी रसमय व्यन्जना करता है, वहां उस व्यन्जनामें उसका अपने जीवनमें स्पष्ट प्रकाश पाकर, समग्र मनकी स्पष्टता रूप मंगल, रमणीयता रूप, सौन्दर्य, पटुता रूप शक्ति, निश्चलता रूप आनन्दमय अपने स्वभावकी (अनुभव सिद्ध ज्ञान और अनुभवोत्तर विज्ञान रूप) प्राप्ति कर लेता है—

नाम सप्रेम जपत अनयासा, भगत होहिं मुद मंगलवासा। बा. कां. २४

पुरुष-सूक्त

अर्थ, भावार्थ और स्पष्टीकरण

इसमें ऋग्वेद, वाजसनेयी यजुर्वेद, तैत्तिरीय सामवेद और अथर्ववेद इनमेंके सभी सूक्त देकर मन्त्रोंकी चरणसूची भी दी गई है।

(१) विश्वव्यापी विराट् पुरुष, (२) पृथ्वीपर सर्वत्र फैला हुआ 'मानवसमाजरूपी पुरुष' अथवा 'राष्ट्रपुरुष' और (३) 'मानव व्यक्तिरूप पुरुष' इनका आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक वर्णनके सम्बन्धसे सृष्टिका निर्माण, यज्ञीय जीवन, वेदोंका प्रकटीकरण, यज्ञचक्र परिवर्तन, परमात्मा-पुरुष और प्रकृति पदार्थोंकी उत्पत्ति इत्यादि विषयोंका भी विचार इस पुस्तकमें करके श्रीमद्-भागवतके पुरुषसूक्तका भी अनुवाद दिया है।

(२) आप पुरुषसूक्त का पाठ रोज करते हैं परन्तु उसका अर्थ व गूढार्थ का ज्ञान न होनेसे मानवधर्मके श्रेष्ठ ज्ञानसे वंचित रहते हैं। जीव-जगत् और जगन्नाथ इसकी ठीक कल्पना देनेवाले इस सूक्तका केवल पाठ न करते हुए मण्डलके इस पुरुषसूक्तकी सहायतासे अपना जीवन बनायें और अपना जीवन उन्नत तथा विश्वव्यापी कीजिये।

मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट— 'स्वाध्यायमण्डल (पारडी)' [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जर्मनवासियोंका संस्कृत-प्रेम

(लेखक— श्री वीरेन्द्रकुमार)

'संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जो कोषकी दृष्टिसे भरपूर है, हर तरहसे अत्युन्नत है, पर नियंत्रित है और २६०० वर्ष पूर्व होनेवाले पाणिनीके व्याकरण द्वारा नियत कर दी गई है। यह फैली और इसके कोषमें वृद्धि हुई, यह परिपूर्ण बनी पर यह अपने मूलसे कभी भटकी नहीं। यह, यद्यपि आज सर्वसाधारणकी भाषा नहीं रही, फिर भी, जीवनशक्तिसे भरपूर है। —जवाहरलाल नहेरू

'संस्कृत भाषा, पुरानी चाहे कितनी ही हो, एक आश्चर्यजनक आधार पर टिकी हुई और ग्रीककी अपेक्षा कहीं अधिक पूर्ण है। लेटिनसे ज्यादा भरपूर है तथा दोनों भाषाओं (ग्रीक और लेटिन) की अपेक्षा ज्यादा परिष्कृत है। भाषा तत्वविदोंका मन्तव्य है कि दोनों भाषायें, व्याकरणकी दृष्टिसे, एक ऐसे मूलसे निकली हैं, जो सम्भवतः आज अस्तित्वमें नहीं है'।

— सर विलियम जॉन्स १७८४

कई योरोपीय विद्वानोंने संस्कृत भाषाका अध्ययन किया और एक नये विज्ञान-तुलनात्मक भाषा विज्ञान की नींव डाली। इस कार्यमें जर्मन विद्वान् हमेशा आगे रहे। संस्कृत भाषामें अनुसंधानका अधिक श्रेय उन्हीं को है। आज भी प्रजातंत्रीय जर्मनी (पश्चिमी जर्मनी) के प्रत्येक विश्वविद्यालयमें अन्य भारतीय भाषाओंके साथ संस्कृतके विभाग भी हैं।

हार्दिक अभिनन्दन

जब मैं बर्लिनके इण्डॉलॉजीकी एक संस्थामें निरीक्षणार्थ गया, तो मैंने देखा कि कुछ विद्यार्थी अपने संस्कृतके पाठोंका अभ्यास कर रहे थे। उस दिन उस संस्थामें छुट्टी थी। मेरा हार्दिक स्वागत करते हुए उन्होंने कहा '... तुम्हारे देशके साथ हमारे संबंध कुछ नये नहीं हैं। हमारे यहांके निवासी तुम्हारे देशकी सभ्यताके तथा उस प्रभावके जो उसने संसारपर डाला, हमेशासे प्रशंसक रहे हैं। अनन्तकालसे हम तुम्हारे देशकी सांस्कृतिक, सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, वैज्ञानिक, आर्थिक और राजनैतिक समृद्धिका अनुसरण करते आये हैं।

'बहुत सी संख्यामें जर्मन विद्वान् भारतकी कलात्मक प्राप्तियोंका निरीक्षण करने तथा अद्वितीय भाषा संस्कृतका अध्ययन करने गए भी हैं। क्या तुम जानते हो कि हमारे एक विद्वान् हेनरिक रॉथने १६४६ से १६५० तक आगरामें रहकर संस्कृत पढी थी। बादमें जर्मनी लौटनेपर रॉथने अटनसियाय किशर नामक एक दूसरे विद्वान्की सहायतासे ब्राह्मणिज्म पर १६६७ में एक पुस्तक प्रकाशित की थी। रॉथने संस्कृतके व्याकरण पर भी ग्रंथ लिखा था। वह संभवतः योरोपमें संस्कृतका सबसे पुराना विद्वान् था।'

बादमें मुझे यह भी बताया गया कि जर्मनीमें भारतीय भाषाओंका अध्ययन केवल संस्कृत तक ही सीमित नहीं है। अपितु तामिल तेलुगु आदि भाषायें भी पढाई जाती हैं। विश्वविद्यालयोंमें हिंदीका स्थान महत्वपूर्ण है, और उसमें अन्य भाषाओंकी अपेक्षा विद्यार्थी भी ज्यादा है।

इण्डोलॉजी संस्थाके पाठ्यक्रमके अन्तर्गत भारतके ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विकासोंका अध्ययन भी है। जर्मन विद्वान् इनमें बहुत हिस्सा लेते हैं और उनका यह विश्वास है कि भूतकालके ज्ञानके बिना वर्तमानकालका ज्ञान नहीं हो सकता।

इण्डोलॉजीका विकास १९४५ से शुरू हुआ, तबसे जब

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तक अनेक अनुसंधानात्मक कार्य प्रकाशित हो चुके हैं। उनकी सूची बडी लम्बी है, पर यहां थोडासा दिग्दर्शनके लिए देता हूँ—

एन अटेम्प्ट ऍट ए क्रिटिकल इवेल्यूएशन ऑफ दि कठोपनिषद्- (कठोपनिषद्का आलोचनात्मक मूल्यांकन) -प्रो. एफ. वेलर

टिबटेन- संस्कृत इण्डेक्स टू दि बोधिचार्यावतार— -प्रो. एफ. वेलर

इन्फ्ल्यूएन्स ऑफ दि द्रविडियन लॅग्वेजेज ऑन संस्कृत (द्रविड भाषाओंका संस्कृत पर प्रभाव) -प्रो. के. आर्मर।

दि रोल ऑफ शिव इन महाभारत (महाभारतमें शिव का स्थान) -डॉ. मेहलिग।

अर्थशास्त्र ऑफ कौटिल्य (कौटिल्य-अर्थशास्त्र)-मिसेज. इ. रिटशेल.

दि पोजिशन ऑफ वीमेन इन कौटिल्य एण्ड मनु- (मनु और कौटिल्यमें स्त्रियोंकी स्थिति)- मिसेज- पी. मुखर्जी. कालिदास

दि टेण्डेंसी ऑफ ड्रामा- 'मुद्रा-राक्षस' (नाटककी प्रवृत्ति)

दि पंचतंत्र ऍण्ड इट्स मॉरल टीचिंग्स (पंचतंत्र और इसके नैतिक उपदेश)

डॉग्मेटिक कंसेप्शन इन दि ओल्डर बुद्धिज्म (प्राचीन बौद्ध धर्ममें सैद्धान्तिक विचार) कुसुम मित्तल

महापरि निर्वाण सूत्र— प्रो. इ. वाल्डशमिट

लॉजिक ऑफ दि महाभाष्य— (महाभाष्यका तर्कशास्त्र) डॉ. शर्फे।

उत्तम प्रगति

'बुद्धसे गांधी तक धार्मिक सुधारके आन्दोलन' आदि विषयों पर अनुसंधान जारी है, जो भारतको इसके अपने भूतकालसे जोडते हैं।

इण्डॉलोजीकी संस्था भारतके संस्कृत आयोगके रिपोर्ट व संस्कृत साहित्य अकादमीकी पत्रिका "संस्कृत-प्रतिभा" पर भी विचार करती है। संस्थाके अधिकारियोंने भारतीय जनतामें उत्तम अध्यापक वर्ग, उत्तम साहित्यके न प्राप्य होने पर भी अपने विचार प्रकट किए। पर इन न्यूनताओंके बावजूद भी यह संस्था अच्छी उन्नति कर रही है। मैं आसानीसे ही यह अनुभव कर सका कि भारतके द्वारा की गई अध्यापक विषयक, अथवा संस्कृत साहित्य विषयक सहायताका हार्दिक स्वागत किया जाएगा।

पृष्ठसंख्या ६९०] चाणक्य-सूत्राणि [मूल्य ११) डा.व्य. १)

आर्य चाणक्यके ५७१ सूत्रोंका हिन्दी भाषामें सरल अर्थ और विस्तृत तथा सुबोध विवरण। भाषान्तरकार तथा व्याख्याकार स्व. श्री रामावतारजी विद्याभास्कर, रतनगढ (जि. बिजनौर)। भारतीय आर्य राजनैतिक साहित्यमें यह ग्रन्थ प्रथम स्थानमें वर्णन करने योग्य है यह सब जानते हैं। व्याख्याकार भी हिन्दी जगत्में सुप्रसिद्ध हैं। भारत राष्ट्र अब स्वतन्त्र है। इस भारतकी स्वतन्त्रता स्थायी रहे और भारत राष्ट्रका बल बढे और भारत राष्ट्र अग्रगण्य राष्ट्रोंमें सन्मानका स्थान प्राप्त करे, इसकी सिद्धता करनेके लिये इस भारतीय राजनैतिक ग्रन्थका पठन पाठन भारतभरमें और घरघरमें सर्वत्र होना अत्यंत आवश्यक है। इसलिये इसको आज ही मंगवाइये।

श्री मन्त्री— स्वाध्याय मण्डल,
पोस्ट- 'स्वाध्याय मण्डल (पारडी)', पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'मैं' या 'आत्मा'

[लेखक— श्री पं. विद्यानन्दजी वेदालङ्कार, आचार्य- गुरुकुल महाविद्यालय, बैरगनिया (बिहार)]

मैं अपनेको नहीं जानता पर सबको जानता हूं ऐसा कहते हरेकको कुछ संकोच होता है। पर क्या, 'मैं क्या हूं' इसका उत्तर दे सकता हूं। ऐसा आत्म निरीक्षण करने पर सत्य सामने आ जाता है।

हमारे देशमें पता नहीं कबसे वेदकी प्रामाणिकता सर्वोपरि हो गई थी। स्वामी शंकराचार्यने वेदमंत्रोंके उद्धरण तो कम दिये हैं पर वेदकी प्रामाणिकता सर्वोपरि मानने पर जोर बहुत दिया हैं। परन्तु आज आर्य समाज ही वेदवादी है। वह चल तो रहा है बुद्धि जन्य आदर्शवाद पर परन्तु तर्क प्रधान वेदवादका घेरा भी पंडित लोग दृढ करते जाते हैं। आज हिन्दुओं पर आर्य समाज छाता जा रहा है। पर यह प्रभाव अन्तर्मन पर कम, पर बाह्यमन पर अधिक है। क्योंकि आर्य समाजी भी चलता जाति पंचायतके साथ है पर बोलता 'दयानन्द' की बात है।

इस प्रकार आज गुरुकुल जगत्को छोडकर वेदकी प्रामाणिकता 'वाद' भर है। वेदाध्ययनमें लगे लोग ही इसकी प्रामाणिकता समझते हैं। सुनने और पढनेमें समय बिना लगाये भी कुछ वेदके आधार पर बोलनेवाले विद्वान् हैं। जो साहबोंके अनुवाद पढे हैं जो मिसमेयोकी प्रवृत्ति पर लिखे गये हैं। उनमें मतवाद, अपने अंधविश्वास और संस्कृत भाषाके ज्ञान पर लिखे अर्थोंको प्रामाणिक माननेकी चेष्टा थी। वैदिक भाषा और संस्कृत भाषामें अन्तर है। हिन्दी आदि संस्कृतसे निकली भाषाज्ञान संस्कृतका अर्थ समझनेके लिये अपर्याप्त है। वही बात संस्कृतज्ञके लिये वेदार्थ समझनेमें है। आज वेदार्थके लिये पदपाठ और स्वर ज्ञानका ध्यान रखना भी आवश्यक हो गया है।

यजुर्वेद अध्याय २५।मंत्र १३ में लिखा है कि, 'य आत्मदा' जो आत्म ज्ञानका दाता है। इससे स्पष्ट होता है कि वेदकी दृष्टिमें 'आत्म ज्ञान' ईश्वर देता है।

यजुर्वेद अ० २३। निम्न है—

ओं यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा
जगतो बभूव। य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः
कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

जो प्राणवाले और अप्राणीरूप जगत्का अपनी अनन्त महिमासे एक ही राजा विद्यमान् है, जो इस मनुष्यादि और गौ आदि (चौपाये) प्राणियोंके शरीरकी रचना करता है। हम लोग उस सुख स्वरूप सकलैश्वर्यके देनेवाले परमात्माकी उपासना अर्थात् अपनी सकल उत्तम सामग्रीको उसकी आज्ञा पालनमें समर्पित करके भक्ति विशेष करें। ऋषि दयानन्द।

इस मंत्रमें दो पाये और चौपाये जीवोंके साथ सप्राण और निष्प्राण जीवोंका वर्णन मिलता है।

निष्प्राण जीव

निष्प्राण जीव अद्भुत प्रतीत होता है। क्योंकि वैज्ञानिक भी ताप, प्राण, चेतना, और शरीरकी सक्रियताको ही जीवन चिह्न मानते रहे हैं। आत्माके लिंग महर्षि गौतमने भी इन्हींको माना है। वैज्ञानिकोंके द्वारा निर्मित आधुनिकतम यंत्र भी इन्हीं जीवन चिह्नोंको जाननेके लिये बने हैं। बडासे बडा चिकित्सक भी इन यंत्रोंसे जीवन चिह्न न मिलने पर शरीरको 'मृत' कह देता था। परन्तु अब शीतल, निष्प्राण एवं निष्क्रिय शरीरमें भी जीव मिलने पर अद्भुत स्थिति पैदा हो गई है। आज नये परीक्षणोंने शरीरमें ताप जन्य प्राण, चेतना एवं शरीरकी सक्रियताके साथ जीवकी भी पृथक् सत्ता प्रमाणित कर दी है।

मृत्युकालीन तापमान

९८.४ डिग्री मनुष्यका सामान्य तापमान माना जाता है। डा. नैथालियन क्लोटमैन कहते हैं कि गाढी नींदमें हमारा तापमान ९७ डिग्री हो जाता है जो निम्न तम ताप-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मान है। जो मृत्यु पूर्वका तापमान है। ऐसा ही बडेसे बडे चिकित्सकका विश्वास है। परन्तु नये परीक्षण बताते हैं कि, ८८ डिग्री तापमान पर भी मृत्यु नहीं होती। ९४ डिग्री तक तापमापक यंत्रमें चिह्न रहते हैं। ९४ डिग्रीसे कम तापमान पर ध्रुव मृत्युका विश्वास चिकित्सकोंको है।

फिलेडेलिफियामें हेनमैन चिकित्सालय है। इसमें हृदय रोगसे पीडित क्लोबलैण्डकी जुडिथ स्कमडिट् ११ वर्षीया बालिका प्रविष्ट हुई। डा. पी. वैलीने उसकी शल्य चिकित्सा की। उसे मूर्छित करके उसका शरीर रेफ्रीजेटरमें रख दिया और उसका तापक्रम ९८.४ से घटाकर ८८ डिग्री कर दिया। उसके हृदयसे निकलनेवाले शुद्ध खूनका प्रवाह ३ मि. की जगह ५ मि. तक रोक लिया। क्योंकि शरीरका तापमान घटने पर शरीरके सभी अंगोंकी क्रिया शिथिल पड गई थी। इसी कारण शल्य क्रियाके लिये अधिक समय मिला। पर १० डिग्री तक तापमान गिरने पर भी मृत्यु नहीं हुई।

तापका प्रभाव

ताप जन्य शरीरकी क्रियाशीलता पर प्रश्नोपनिषद्ने भी प्रकाश डाला है। प्राणियों एवं वनस्पति जगत्के समान सभीके प्राणोंका नियमन कर्ता सूर्य है। सूर्य ताप पृथ्वीकी गतिके अनुसार घटता बढता हुआ हमें प्राप्त होता है। इसी कारण ऋतु परिवर्तन होता है। ऋतुओंके अनुसार सबकी दशा बदलती रहती है। वनस्पतियोंकी दशामें परिवर्तन तो हम स्पष्ट देखते हैं। परन्तु कुछ प्राणियों पर भी प्रभाव स्पष्ट दीखता है। सर्प, कछुआ मेंढक आदि जीवोंकी शारीरिक क्रियाएं शरद्में बहुत धीमी पड जाती है; लगभग रुक जाती है। तब भी वे जीते रहते हैं। सांप तो पतझडके समान केंचुली भी छोडता है।

दिनमें हमारे मन और शरीर क्रिया शील रहते हैं, पर रात्रिमें निष्क्रिय सो जाते हैं। गाढी नींदमें सपने भी बन्द हो जाते हैं। वर्षमें सूर्य तापका घटना बढना और तदनुकूल ऋतु परिवर्तन हम देख और समझ लेते हैं। पर दिनमें लक्षित नहीं करते। पर दिन भी उसी प्रकार ह्रास होता है। कई फूल भी दिनमें खिलते हैं और रातमें बन्द हो जाते हैं। उन पर भी हमारे दिन और रातका प्रभाव पडता है।

शरीरका तापमान हमारा घटता बढता रहता है। तापक्रम घटने पर शरीर, प्राण और मन सबकी क्रिया घटती है। ताप जन्य प्रभावके विषयमें यही अन्तिम सत्य हो यह बात नहीं है। तापका अभाव होने पर शरीर, प्राण और मनकी क्रिया बन्द भी हो जाती है। जीव तब भी शरीरमें रहता है।

निष्प्राण जीव

सेंट लुई विश्वविद्यालयमें एक जीव अनुसंधान शाखा है। उसके संचालक फादर वैसक जेल्युअट हैं। उन्होंने मुर्गीके भ्रूणोंको हिमसे ३२० गुणासे भी अधित ठण्डा कर दिया। वे हिमातीत शीतल भ्रूण जमकर पत्थरके समान कडे हो गये। उनके शरीरकी एवं मनकी सारी क्रियाशीलता बन्द हो गई। आधुनिक तम यंत्र भी जीवन चिह्न न बता सके। उन्हें मृत बताया गया।

तब उन भ्रूणोंको उष्ण रक्तमें रक्खा गया। धीमे धीमे शरीरमें तापके बढने पर मस्तिष्क, दिल प्राण आदि काम करने लगे। चेतना लौट आई। वे सुषुप्त जीव उठे। उनमें कुछ जी उठे और कुछ मर गये।

प्राण, चेतना और शरीर सभीके बन्द होने पर भी मृत्यु नहीं हुई। जीव ताप शून्य, निष्क्रिय एवं अचेतन शरीरमें भी रहा। इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि सक्रियता तापजन्य होती है। तापजन्य सक्रियताका आरंभ जीवके कारण होता है। जीवहीन शरीरोंमें ताप भी क्रिया शीलता नहीं पैदा कर सका।

उत्तरी ध्रुव पर प्राणी शीतकालमें निष्क्रियसे होकर पडे रहते हैं। इनमें विशाल ध्रुवीय रीछ भी होते हैं। वे क्षीण शरीर हो जाते हैं। ग्रीष्म आते ही भूखसे छटपटाते दौड पडते हैं।

निष्प्राण, निष्क्रिय, एवं अचेतन जीवकी सत्ता हमें विवश कर रही है। अब हम जड जगत् मृत है नहीं कह सकते। श्री जगदीश चन्द्र वसुने वनस्पति जगत्में जीव खोजा था। हम जड जगत्में भी जीव नहीं है कह नहीं सकते।

डा. सटालसमेर केलिफोर्नियाके हैं। उन्होंने गर्भसे बाहर मानव भ्रूणों पर भी यह परीक्षण किया है। अतः सभी प्राणी निष्क्रिय, निष्प्राण होकर भी मर जाते हैं या नहीं, हम नहीं कह सकते।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जीना है तो मिटा दो ये जातपांत

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी, गव्हर्नमेण्ट टीचर्स ट्रेनिंग कालेज, P. O. पीपलखेडा, धार)

जगद्पिता परमात्माके प्राणप्रियपुत्रोंको आज आपसमें कलह करते देख कौनसा विवेकशील व्यक्ति दुःख नही पाता है। हम ब्राह्मण हैं, हम अछूतोंसे कोसों दूर रहेंगे, हम इन हरिजनोंको मंदिरमें नहीं आने देंगे। आदि ऐसे कितने ही तर्कोंसे मनुष्यके बीच भेदभावकी दीवार इन समाजके ठेकेदारोंने खडी कर दी है। पूज्य बापूके सद्-प्रयत्नोंसे यह भेदभावकी गहरी खाई बहुत कुछ अंशोंमें भर गई है, लेकिन फिर भी ये समाजके ठेकेदार अपने आपकी डेढ चावलकी खिचडी अलगसे पका रहे हैं। लेकिन यह युग तो संघशक्तिका है। 'संघे शक्ति कलियुगे' के अनुसार अब हमें सबको अपनी एकताके स्वरूपका बोध कर लेना ही उचित है क्योंकि हम सब एक हैं 'अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो।' ऋग्वेद ५-६०-५ (मनुष्योंमें कोई ऊंचनीच नहीं, सब भाई भाई हैं।)

यदि हम अतीतके स्वर्णिम पृष्ठोंको पलटें तो हम यही पावेंगे कि एक ही पिताके पुत्र जिस तरह भाई भाई होते हैं उसी तरह हम भी आपसमें भाई हैं।

वयस्कृत् तव जामयो वयम्। ऋ. १-३१-७-१०

(एक ही परमपिताके पुत्र हम सब आपसमें भाई भाई हैं।)

आज हमारी जो दीनहीन दशा हो रही है उसका कारण यही है कि हमने अपनी वास्तविक स्थितिको भुलाकर रूढिवादिताके कुचक्रमें मानवताको चुनौती दी, मानवको मानवसे मिलने नहीं दिया। तभी तो प्रथम विश्वधर्म सम्मेलनमें वेदना भरे शब्दोंमें हमारे सम्माननीय प्रधानमंत्री पं. नेहरूको कहना पडा, 'जब धर्म, भाषा और जातिके भेद भावको दूर किये बिना हमारा जीवन और संपूर्ण राष्ट्र विघटित हो जावेगा।'

वास्तवमें यदि हमने अपनी स्थितिको नहीं सुधारा अपने समाजके वास्तविक स्वरूपको नहीं समझा तो हमारे समस्त वैभव, संस्कृति और धर्मके अन्तका दिन दूर नहीं है।

भारतीय संस्कृतिमें पग पगपर गुण कर्मकी प्रधानता है इसीलिये तो कहा है 'गहना कर्मणो गति' (कर्मकी गति गहन है) सर्वत्र कार्यकी ही प्रधानता है। जो जैसा करेगा वह वैसा भरेगा जिस प्रकार कि तहसीलदारका पुत्र तहसीलदार नहीं हो सकता है, उसी प्रकार यह भी आवश्यक नहीं है कि केवल उच्च वंशमें जन्म मात्रसे कोई व्यक्ति अपने पूर्वजोंके समान होजावे। मनुष्य अपने ही कर्मोंसे आगे बढ जाता है ऊंचा चढता है. इस बातके हजारों प्रमाण हमारे धर्म ग्रंथोंमें मौजूद हैं। लेकिन हम उन्हें तो भूलते जारहे हैं और अंधविश्वासी बन कर मानवके साथ पशुसे भी गया बीता व्यवहार करनेमें जरा भी नहीं हिचक रहे हैं। लेकिन मनुकी सन्तानों! मनुका यह आदेश मत भूलो।

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

मनुस्मृति

(जन्मसे तो सभी शुद्र होते हैं। द्विज संस्कारोंके कारण कहलाता है। यदि वह वेद अध्ययन करनेवाला है तो वह विप्र कहलायेगा और जो ब्रह्म जानता है, वह ब्राह्मण कहलाता है।)

लेकिन आज तो ब्राह्मणोंने अपने कर्तव्यको तिलांजली देकरके अपने पैरों पर मानों स्वयं ही कुल्हाडा मार लिया है। वे कर्तव्य पक्षको छोडकर आज केवल दैविकताके कारण अपने आपको ब्राह्मणत्वका अधिकारी मानता है। लेकिन

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ब्राह्मणत्वका अधिकारी कौन है। जरा वैदिक एवं तदनुगामी वाङ्मयमें देखिये।

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगां।
ऋग्वेद १०।१०७।६

(वही ऋषि और ब्राह्मण है जो अपने ज्ञानसे दूसरोंको सन्मार्ग पर लगाता है।)

इसी प्रकार ब्राह्मणत्वकी पहिचान बतलाते हुए महाभारतमें कहा है—

न क्रुध्येन्न प्रहृष्येच्च मानितोऽमानितश्च यः।
सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवाः ब्राह्मणः विदुः॥
(शा. प. २४४।१४)

(सम्मानित होकर भी जो हृष्ट नहीं होता, अपमानित होकर भी रुष्ट नहीं होता, जो सर्व भूतको अभय देनेवाला है, उसे ही देवता लोग ब्राह्मण कहते हैं।

ऐसे ही परम पुनीत तत्वज्ञानसे भरे पूरे देव स्वरूप ब्राह्मणोंके लिये हमारे यहां पहचान करनेकी यह युक्ति बतलाई गई है।

किं ब्राह्मणस्य पितरं किमु पृच्छसि मातरं।
ऋतं चेदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः॥
(काठक संहिता ३०।१)

(ब्राह्मणके मातापिताकी क्यों पूछते हो? यदि उसमें ऋत है तो वही उसका पिता है वही पितामह।)

ब्राह्मणोंके गोत्रोंसे पता चलता है कि वे कौशिक वशिष्ट गौतम, भारद्वाज आदिकी संतानें हैं। मित्रावरुणके औरस उसका जन्म हुआ था। वशिष्टजीके जन्मके सम्बन्धमें कुछ गोलमाल था, इसी कारण तो ऋग्वेदमें उन्हें कहीं तो उर्वशी पुत्र और कहीं तृष्णु वंशोत्पन्न कहा गया है। कई जगह उन्हें ब्रह्माका मानस पुत्र भी कहा गया है। देखिये—

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्
मनसोऽधिजातः। (ऋग्वेद ७-३३-११)

इसी प्रकार 'सच्चे ब्राह्मण' का एक उदाहरण 'छान्दोग्य' में मिलता है।

तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति
समिधं सोम्याहरोप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति।
(छान्दोग्य ४-४-५)

(जाबालके पुत्र सत्यकामने माताकी बातको गुरुसे ज्यों-का त्यों कहा तो गुरु गौतमने कहा सच्चे ब्राह्मणके सिवाय और कोई ऐसी बात नहीं कह सकता। जाओ सौम्य, समिधा लाओ। मैं तुम्हें उपवीत करूँगा, इसलिये कि तुम सत्यसे विमुख नहीं हुए।)

आज हम प्राणीमात्रमें एकत्वकी भावनासे दूर रह कर ही दुःख पा रहे हैं। जाति पांतिके भेदभावने हमें इन्सानियतसे कोसों दूर लाकरके रखदिया है। अब वह समय आगया है कि हम सम्हल जावें और तुरन्त ही प्राणी मात्रको अपना बन्धु सच्चे हृदयसे मानकर मानवताकी रक्षा करें। आज हम हरिजनोंके हाथका पानी पीनेसे घबराते हैं, लेकिन भारतके स्वर्णिम युग वैदिक कालमें यह बात नहीं थी, तभी तो अथर्ववेदमें मंत्रद्रष्टा महर्षिने मानवताका पावन संदेश देते हुए कहा है—

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे
सह वो युनज्मि। सम्यञ्चो अग्निं सपर्यतारा
नाभिमिवाऽभितः॥ (अथर्ववेद ३-३०-६)

(हे मनुष्यो! तुम लोगोंकी पानी पीनेकी तथा भोजन करनेकी जगह एकही हो; समान धुरामें मैंने तुम सबको समानतासे जोत दिया है जिस प्रकार चक्रके बीच आरे जमे रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी एक जगह एकत्रित होकर अग्निमें हवन करो।)

कहां तो एकत्रित होकर हवन करनेका महर्षियोंका आदेश, कहां यह कहना कि 'गायत्री तो केवल ब्राह्मणोंकी है। शूद्र तो मंदिरमें प्रवेश भी नहीं कर सकते हैं। अमृतपायी, तत्ववेत्ता ऋषियोंके पुत्रो! अपने पूर्वजोंके आदेशोंकी अवहेलना करके क्या आप मानवताका उपहास नहीं कर रहे हैं।

मानव शुभकर्म करके देवत्व और ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है।

एभिस्तु कर्मभिर्देवि शुभैराचरितैस्तथा।
शूद्रो ब्राह्मणतां गच्छेद्वैश्यः क्षत्रियतां व्रजेत्।
(ब्राह्मपुराण २२३।३२)

(शुभ कर्मोंके आचरणसे शूद्र भी ब्राह्मणत्वको प्राप्त करता है और वैश्य भी क्षात्रियत्वको।

उपरोक्त प्रमाणसे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि गुण-कर्मके अनुसार ही जातिका निर्माण होता है। तभी तो भविष्य पुराणमें स्पष्ट कहा है—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शूद्रब्राह्मणयोर्भेदो मृग्यमाणोऽपि यत्नतः।
नेक्ष्यते सर्वधर्मेषु संहतोस्त्रिदशैरपि॥
(भविष्यपुराण ४१।३९)

(अति यत्नपूर्वक सभी देवता मिलकर भी खोजें तो भी ब्राह्मण और शूद्रमें कोई भेद नहीं पावेंगे।)

फिर 'हरिको भजे सो हरिका होई, जातिपांति पूछे नहीं कोई।' के अनुसार जो ईश्वरका सच्चा भक्त है, वही ब्राह्मण है।

न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृता-भा०

(जो ईश्वरके सच्चे भक्त हैं, वे ही ब्राह्मण हैं, उन्हें शूद्र नहीं कहना चाहिये।)

चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका। फलान्यथोदुम्बरवृक्षजाते-र्यथाऽग्रमध्यान्तभवानि यानि॥ वर्णाकृति-स्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या। भ. महापुराण ब्रा. अ. ४२

(यदि एक पिताके चार पुत्र हों तो उन पुत्रोंकी एक जाति होनी चाहिये। इसी प्रकार सबका पिता एक परमेश्वर है अतः मनुष्य समाजमें जाति भेद बिलकुल भी नहीं होना चाहिये। जिस प्रकार एक ही गूलरके वृक्षके अग्रभाग मध्यभाग तथा पींडवर्ण, आकृति स्पर्श तथा रस इन बातोंमें एकसे फल लगते हैं, उसी प्रकार एक विराट् पुरुष परम ब्रह्म परमेश्वरसे उत्पन्न हुए मनुष्योंमें भी किसी प्रकारका जाति भेद नहीं होना चाहिये।)

सचमुच ही आज हम एक ही पिताकी सन्तान होते हुए भी आपसमें जातपांतके कुचक्रमें पडकर घर घरमें महाभारतकी प्रक्रिया पूरी करने पर तुले हुए हैं आज हमारी इसी कमजोरीकी तरफ लक्ष्य करते हुए भी भविष्य पुराणमें निर्देश करते हुए जाति पांतिके इस विनाशकारी भेदभावको मिटा देनेका आदेश दिया गया है।

न ब्राह्मणाश्चन्द्रमरीचिशुक्ला न क्षत्रिया किंशुक पुष्पवर्णा। न चापि वैश्या हरितालतुल्या शूद्रा न पांगारसमानवर्णा॥
(भविष्य पुराण ४१।४१)

ब्राह्मण लोग भी चांदीकी किरणके समान शुक्ल वर्ण नहीं है। क्षत्रिय लोग भी किंशुक पुष्पसे लाल नहीं है, वैश्य लोग भी हरतालके समान पीले नहीं है और शुद्र कोयलेके समान काले नहीं हैं।

पादप्रचारैस्तनुवर्णकेशैः सुखेन दुःखेन च शोणितेन। त्वङ्मांसमेदोऽस्थिरसैः समाना-श्चतुःप्रभेदा हि कथं भवन्ति। वर्णप्रमाणाकृति-गर्भवासवाग्बुद्धिकर्मेन्द्रिय जीवितेषु। बल-त्रिवर्गामयभेषजेषु न विद्यते जातिकृतो विशेषः॥ चत्वार एकस्य पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका। एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रैकभावान्न च जातिभेदः॥
(भविष्य पुराण ४१।४२।४३-४४)

(चलना, फिरना, शरीर, वर्ण, केश, सुख, दुःख, रक्त, त्वचा, मांस, मेद अस्थिरस इनमें सभी तो समान हैं, फिर चार वर्णोंका भेद कहां है? वर्ण प्रमाण, आकृति, गर्भवास, वाग्, बुद्धि, कर्म, इन्द्रिय प्राण, शक्ति, धर्म, अर्थ, कामव्याधि, औषधि इनमें कहीं भी तो जातिगत प्रभेद नहीं है। जिस प्रकार एक ही पिताके चार पुत्रोंकी जाति एक ही होती है, उसी प्रकार सभी पुत्रोंका यह भगवान् एक मातापिता है। इसीलिये जाति भेद नहीं है।)

अतः ईश्वरके समस्त वरद पुत्रो! अब युगकी पुकार और शास्त्र आदेशोंकी ओर एक नजर फेंकदो। यदि अपनी समाज, धर्म, राष्ट्र और जन जनकी उन्नति करनी हो तो मिटा दो ये जातपांत।

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मनोपदेश

(श्री प्र. ग. यावळकर, पीपलखेडा)

★

(श्री. समर्थ रामदास स्वामी द्वारा रचित 'मनाचे श्लोक' इनका हिन्दीमें पद्यमय अनुवाद। निम्न अनुवादमें सुविधाके लिये 'मराठी मनाचे श्लोक' का मराठी मूल श्लोक सर्व प्रथम संक्षेप-में दिया है और बादमें उसका अनुवाद है। रचयिता)

वंदना

मराठी — गणाधीश जो ईश साऱ्या जगाचा.....गमू पंथ आनंद सा राघवाचा।

हिन्दी — गणईश गणेश जो ईश्वर है, सारे जगका परमेश्वर है।
जो मूलके मूलका प्रारंभ है, और निर्गुणका भी आरंभ है।
कर वंदन शारदा माईको, वाचा चतुराई कि जननीको।
राघवका पथ अपनाता हूं, जहां नित्य आनंद ही पाता हूं ॥ १ ॥

\+ + +

मराठी — मना सज्जना भक्ति पंथेचि जावे..... जनी वंद्य ते सर्व भावे करावे ॥

हिन्दी — हे सज्जन मन भक्ति पदको, तू हरदम अपनाता जा।
और प्रभूको निज हिरदयमें, अपने आप ही पाता जा ॥
जो जो निंद्य वस्तु है जगमें, उन सबका तुम त्याग करो।
जो जो वंद्य वस्तु है उनको, मनोभावसे ग्रहण करो ॥

\+ + +

मराठी — प्रभाते मनीं राम चिंतीत जावा.....जनीं तोचि तो मानवी धन्य होतो।

हिन्दी — हे मन प्रति प्रभातमें जगकर, श्री रामचंद्रको भजता जा।
और सदोदित अपने मुंहसे, प्रथम उसीको स्मरता जा ॥
यही महा आचार है इसको, कभी न त्यजना जीवनमें।
धन्य हुआ करता है मानव, वही सदा इस जीवनमें ॥

\+ + +

मराठी — मना चंदनाचे परी त्वां झिजावे..... ही च क्रीया धरावी ॥

हिन्दी — हे मन! चंदनके समान तू, प्रति[illegible] प्रतिदिन घिसता जा।
और हृदयमें सज्जनताको, अपने पास मिलाता जा ॥
देह रहे न रहे पर पीछे, कीर्ति [illegible]ी चाहिये,
रे मन सज्जन इसी तरहका, कार्य ही होना चाहिये ॥

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

Regd. No. G. 71

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें नाना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा है, उनको लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश आचरणमें लानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये ये व्याख्यान हैं। इस समय तक ये व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

१ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
२ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
३ अपना स्वराज्य।
४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
८ सप्त व्याहृतियाँ।
९ वैदिक राष्ट्रगीत।
१० वैदिक राष्ट्रशासन।
११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
१२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
१३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
१४ त्रैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
१५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
१६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
१७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
१८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
१९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
२० मानवके दिव्य देहकी सार्थकता।
२१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
२२ मानवके अन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
२३ वेदमें दर्शाये विविध प्रकारके राज्यशासन।
२४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
२५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
२६ रक्षकोंके राक्षस।
२७ अपना मन शिवसंकल्प करनेवाला हो।
२८ मनका प्रचण्ड वेग।
२९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
३० वैदिक समयकी सेनाव्यवस्था।
३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्यमन्त्रीके कार्य और व्यवहार।
३८ वेदोंके ऋषियोंके नाम और उनका महत्त्व।
३९ रुद्र देवताका परिचय।
४० रुद्र देवताका स्वरूप।
४१ उषा देवताका परिचय।
४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
४३ विश्वेदेवा देवताका परिचय।
४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकोन।
४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायगे। प्रत्येक [illegible] मूल्य ।=) डाः आने रहेगा। प्रत्येकका डा. व्य. ≈) दो आना रहेगा। इस व्याख्यानोंका एक पुस्तक [illegible] वेद लेना हो तो उस सजिल्द पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. व्य. ।॥) होगा।

मंत्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मुद्रक और प्रकाशक- व. श्री. सातवलेकर, भारत-मुद्रणालय, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मंडल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu